मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 82 ● वर्ष 9, अंक 8 ● अक्टूबर 2019 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

श्रम क़ानूनों में किये गये मज़दूर-विरोधी बदलावों के मायने 5

नोबल पुरस्कार और ग़रीबी दूर करने की पूँजीवादी चिन्ताओं की हक़ीक़त 6

क्या आप अवसाद ग्रस्त हैं? दरअसल आप पूँजीवाद के शिकार हैं ! 10

देश की अर्थव्यवस्था ढहने के कगार पर है!

मेहनतकश साथियो, सरकार और संघ परिवार के झूठों और झूठे मुद्दों से सावधान रहो!

सम्पादक मण्डल

किसी भ्रम में मत रहिए! नरेन्द्र मोदी अमेरिका जाकर 'सब चंगा है' का नारा लगा आये हैं, वित्त मंत्री कह रही हैं कि बैंकिंग प्रणाली को लेकर चिन्ता की कोई बात नहीं है, एक वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री कह रहा है कि सिनेमा हाउसफ़ुल जा रहे हैं इसका मतलब है कि कोई आर्थिक मन्दी नहीं है! मगर सच्चाई है कि बार-बार इनके झूठों की चादर फाड़कर बाहर निकल आ रही है।

सत्ता में बैठे भगवा गिरोह को पता है कि आर्थिक संकट की मार जब लोगों के सिर पर पूरी ताक़त से पड़ने लगेगी, तब झूठ के उनके सारे पुलिन्दे काम नहीं आयेंगे, इसलिए वे ध्यान बँटाने के लिए एक के बाद एक तिकड़में करने में लगे हुए हैं। आनन-फ़ानन में राम मन्दिर पर मनमाफ़िक फ़ैसला करवाकर जनता को कुछ दिनों तक नशे का एक और डबलडोज़ देने की तैयारी चल रही है। नीचे से लेकर ऊपर तक देश की न्यायपालिका जिस तरह सरकार के रीढ़विहीन चाकरों की तरह पेश आ रही है, उसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सबकुछ पहले से तय करके ही अचानक रोज़-रोज़ सुनवाई की यह क़वायद शुरू करायी गयी हो। भाजपा के कुछ बड़बोले नेता ऐसे बयान दे ही चुके हैं कि सुप्रीम कोर्ट हमारा है, फ़ैसला हमारे ही पक्ष में आयेगा!

देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में लगभग आधे का योगदान करने वाले ऑटोमोबाइल उद्योग की हालत ऐसी है कि पिछली कई महीनों से सभी बड़ी कम्पनियों को बीच-बीच में उत्पादन ठप्प करना पड़ रहा है, लाखों गाड़ियाँ बिना बिके सड़ रही हैं, सैकड़ों शोरूम बन्द हो गये हैं और लाखों रोज़गार छिन रहे हैं। 26 महीनों में पहली बार पिछले अगस्त में देश के कारख़ानों की कुल पैदावार में कमी आ गयी। मैन्युफ़ैक्चरिंग और बिजली दोनों का उत्पादन बढ़ने के बजाय घट गया, जोकि व्यापक आर्थिक मन्दी के गहराने का एक और संकेत है। यह पिछले सात वर्षों का सबसे बुरा प्रदर्शन था। सांख्यिकी विभाग द्वारा जारी आँकड़े दिखाते हैं कि मैन्युफ़ैक्चरिंग सेक्टर के 23 उद्योग समूहों में से 15 में गिरावट आयी। इनमें सबसे आगे थे मोटर वाहन (-23.1%), ट्रेलर और मशीनरी तथा उपकरण (-21-7%)। मैन्युफ़ैक्चरिंग और बिजली उत्पादन में क्रमश: 1.2% और 0.9% की कमी आयी, जबकि खनन उत्पादन में नहीं के बराबर वृद्धि हुई। इसका एक बड़ा कारण था बिजली उत्पादन में कमी के चलते कोयले की माँग में गिरावट। कैपिटल गुड्स, यानी जिन मालों का इस्तेमाल दूसरे मालों के उत्पादन में होता है, उनकी माँग में लगातार आठवें महीने 21% की गिरावट आयी जोकि उत्पादन में निवेश की लगातार कमी का संकेत है। टिकाऊ उपभोक्ता मालों में लगातार तीसरी तिमाही में 9.1% की गिरावट आयी।

बैंकों की हालत पतली है। कई बड़े बैंक कभी भी डूब सकते हैं। पंजाब एंड महाराष्ट्र कोऑपरेटिव बैंक में जो लोगों के साथ हुआ वह तो आने वाले संकट की एक झलक मात्र है। बैंकों के लाखों करोड़ रुपये पहले ही पूँजीपतियों ने दबा रखे हैं। ऊपर से अनेक बड़ी कम्पनियाँ जिनमें बैंक और बीमा कम्पनियों के लाखों करोड़ रुपये लगे हुए हैं, दिवालिया होने के कगार पर हैं या लगातार भारी घाटे में चल रही हैं। जनता के टैक्सों से बटोरी रकम में से एक बार पौने दो लाख करोड़ रुपये और एक बार एक लाख करोड़ रुपये के बेलआउट पैकेज सरकार बैंकों को पहले ही दे चुकी है। मगर उसे डकार

(पेज 9 पर जारी)

विकराल बेरोज़गारी : ज़िम्मेदार कौन? बढ़ती आबादी या पूँजीवादी व्यवस्था?

– अमित

पिछले 15 अगस्त को देश के 72वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले से प्रधानमंत्री मोदी ने एक बार फिर से दहाड़ते हुए लम्बा-चौड़ा भाषण दिया और देश की "अल्पज्ञानी" जनता को ज्ञान के नये-नये पाठ पढ़ाये! इस बार माननीय प्रधानमंत्री जी ने 'भारी जनसंख्या विस्फोट' को लेकर विशेष चिन्ता भी ज़ाहिर की और उन्होंने जनता को ही इसके लिए ज़िम्मेदार ठहराया। इस अल्पज्ञानी जनता से उन्होंने कहा कि आपकी ग़रीबी, बेरोज़गारी के लिए आप ही ज़िम्मेदार हैं, इसके लिए हमारे प्रिय पूँजीपति मित्रों को दोष न दें! वे बेचारे तो आपको ग़रीबी से निजात दिलाने के लिए हर सम्भव कोशिश कर रहे हैं, लेकिन आप तो दिन पर दिन बच्चे पैदा करने में व्यस्त रहते हैं। बेचारे पूँजीपति कब तक मेहनत कर आपकी ग़रीबी और बेरोज़गारी दूर करते रहेंगे? इसलिए आप अपने गिरेबान में झाँकिए न कि उनको दोष दीजिए बल्कि उनका एहसान मानिये और उनकी मेहनत की इज़्ज़त करना सीखिए!

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक कार्ल मार्क्स ने बहुत पहले कहा था कि शासक वर्गों के विचार ही शासक विचार होते हैं। यानी कि शासक वर्ग जनता के बीच अपने विचारों का वर्चस्व क़ायम करता है। वह सिर्फ़ हथियारों और डर के बल पर अपनी लूट को क़ायम नहीं रखता है, बल्कि जनता के दिमाग़ पर क़ब्ज़ा करके अपने शोषण को वैधता प्रदान करता है। अपने हितों को जनता के हितों की तरह पेश करता है और अपने कुकर्मों की ज़िम्मेदारी बड़ी होशियारी से जनता के ऊपर ही थोप देता है। जनता उन्हीं विचारों को सहज बोध की तरह स्वीकार कर लेती है क्योंकि शासक वर्ग टीवी, अख़बार, इण्टरनेट आदि प्रचार माध्यमों, अपने शिक्षण संस्थानों, समाज में चलने वाले मुहावरों, कहावतों, धार्मिक संस्थानों के ज़रिये अपने पक्ष में जनता की सहमति बनवाता है।

'आबादी की समस्या' के बारे में भी जनता के बीच ज़बर्दस्त भ्रम का प्रचार-प्रसार किया गया है। जब भी लोगों से बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी आदि समस्याओं पर बात की जाती है तो जनता की तरफ़ से ही यह बात आती है कि सरकार बेचारी क्या करेगी, देश की आबादी ही 130 करोड़ से ज़्यादा हो गयी है, ऐसे में कहाँ सबको रोज़गार, रोटी, शिक्षा आदि दे पाना सम्भव है? संसाधन तो सीमित हैं, उत्पादन की गति 1,2,3,4... के हिसाब से बढ़ती है जबकि जनसंख्या तो 1,2,4,8... के हिसाब से बढ़ती है। ऐसे में ग़रीबी, बेरोज़गारी तो रहेगी ही! लोग ख़ुद ही इसके लिए ज़िम्मेदार हैं!

तो आइए, हम इस बात की जाँच पड़ताल करते हैं कि क्या वास्तव में 'जनसंख्या विस्फोट' हो रहा है, जैसाकि हमारे माननीय प्रधानमंत्रीजी हमें चेतावनी दे रहे हैं? बेइन्तहा बेरोज़गारी की ज़िम्मेदार क्या वास्तव में बढ़ती जनसंख्या है? क्या वास्तव में संसाधनों की कोई कमी है? क्या सामाजिक उत्पादन की रफ़्तार जनसंख्या वृद्धि की रफ़्तार से धीमी है? बेरोज़गारी की समस्या की ज़िम्मेदार मेहनत की लूट पर टिकी यह पूँजीवादी व्यवस्था है या

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

क्या आप मज़दूर बिगुल के ज़मीनी रिपोर्टर नहीं बनना चाहते?

क्या आप नहीं चाहते कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप नहीं चाहते कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिये लोगों तक पहुँचें?

तो कलम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें भेज दीजिए। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे पास भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

आपस की बात

मज़दूरों पर बढ़ते हमलों के इस समय में करोड़ों की सदस्यता वाली केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें कहाँ हैं?

पाँच करोड़ संगठित पब्लिक सेक्टर के मज़दूरों की सदस्यता वाली ट्रेड यूनियनें तब एकदम चुप मारकर बैठी हैं जब मज़दूर वर्ग पर चौतरफ़ा हमले हो रहे हैं और बेरोज़गारी का स्तर 45 सालों में सबसे ज्यादा है। उन्हें ठेके पर काम कर रहे या छोटे कारखानों में लगे करोड़ों असंगठित मज़दूरों के बिगड़ते हालात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। देश की 51 करोड़ खाँटी मज़दूर आबादी में 84 फ़ीसदी आबादी असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की हैं, परन्तु सीटू, एटक, एचएमएस जैसी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें न तो उनके मुद्दे उठाती हैं और न ही उनके बीच इनका कोई आधार है। कांग्रेसी यूनियन इंटक और संघी यूनियन बीएमएस से तो इसकी उम्मीद करना ही बेवकूफ़ी है।

साल भर में एकाध प्रदर्शनों की रस्म आदयगी के अलावा केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों में मौजूद नेता कभी सरकार द्वारा कमज़ोर किये जा रहे श्रम कानूनों के विरोध में कुछ नहीं करते और ना ही सरकारी उपक्रमों को एक-एक करके बेचे जाने और निजीकरण के लिए बढ़ते कदमों पर कोई एकजुट और जुझारू तेवर दिखा पाते हैं। इन मौकों पर भी वे केवल रस्म अदायगी करते दिखाई पड़ते हैं। सरकार अन्तरराष्ट्रीय और देशी पूँजी के पक्ष में रोज़ाना नयी नीतियाँ बना रही है और सरकारी उपक्रमों को नीतियों द्वारा खोखला किया जा रहा है पर ये ट्रेड यूनियनें केवल उस दिन के इन्तज़ार में बैठी हैं जब उनकी आर्थिक माँगे रखी जायेंगी और वे कुछ टुकड़े पाने के लिए समझौता कर लेंगी। आज जब रेलवे, बीएसएनएल, एमटीएनएल, एचएएल, ओएनजीसी जैसे सरकारी उपक्रमों और बैंकों को भी योजनाबद्ध ढंग से तबाह करके निजीकरण की तैयारी की जा रही है तब भी इनकी यूनियनें खाली गाल बजाने के सिवा कुछ नहीं कर रही हैं। ये ट्रेड यूनियनें ठेका मज़दूरों का इस्तेमाल केवल भीड़ बढ़ाने के लिए करती हैं पर उनके लिए रोज़गार की गारण्टी, न्यूनतम आय और बेरोज़गारी भत्ते जैसी माँग कभी नहीं उठाते। यह सब इसलिए है क्योंकि इन ट्रेड यूनियनों का आधार जिस मज़दूर-कर्मचारी वर्ग में है वह निम्न-बुर्जुआ बन चुका है जिसे अभिजात मज़दूर वर्ग कहा जाता है। उन्हें केवल पूँजीवादी लूट में ही अपना एक हिस्सा चाहिए इसलिए वे सीमित निजी आर्थिक माँगों पर ही खड़े होते हैं। उनकी सभी माँगों की सीमा केवल उनके निजी आर्थिक हित हैं और अर्थवादी संशोधनवाद से ग्रस्त इनका नेतृत्व इन्हीं निजी आर्थिक माँगों पर ही केवल लामबन्द कर सकता है। अर्थवाद यानी मज़दूरों को थोड़े पैसे बढ़वाने की लड़ाई में ही उलझाये रखना ही उनका लक्ष्य है, और मज़दूरों की राजनीतिक चेतना को उन्नत करके पूँजीवाद के ख़ात्मे की लड़ाई के लिए उनको तैयार करना इन यूनियनों का मकसद है ही नहीं। ये जिन राजनीतिक दलों से जुड़ी हैं वे भी संसदीय राजनीति के दलदल में लोट लगाने में मगन हैं। अपनी चुनावी राजनीति के लिए ये भी जाति, धर्म, क्षेत्रीय भिन्नताओं का इस्तेमाल करते हैं। आज मेहनतकशों पर हो रहे फ़ासिस्ट हमले के मुक़ाबले के लिए कमर कसने की इनसे उम्मीद करना आज एक बेवकूफ़ी के सिवा कुछ नहीं होगा।

– पराग, हैदराबाद

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **– लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

मन्दी के बीच मज़दूरों के जीवन के हालात और संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों की दलाली

मन्दी के हालात पर बात करते हुए पहले स्टील फ़ैक्ट्री में काम करने वाले बिगुल संवाददाता विष्णु ने बताया कि जहाँ ठण्डा रोला की फ़ैक्ट्री में एक कारीगर को 8 घण्टे काम करने के लिए तनख़्वाह 9000 रुपए मिलता था तो अब ज़्यादातर फ़ैक्ट्री में मालिक दिहाड़ी पर 8 घण्टे के 250 रुपए दे रहा है। आम तौर पर दिहाड़ी में 50 रुपए तक की कमी हुई है। यह बात न सिर्फ ठण्डा रोला फ़ैक्ट्री के लिए सच है बल्कि आम तौर पर पूरे सेक्टर में मन्दी की वजह से वेतन कम हुआ है। वज़ीरपुर से लेकर सब जगह यही हाल है। फ़ैक्ट्री मालिक किसी भी बात के बहाने से मज़दूर को काम से निकाल देता है और काम की असुरक्षा बढ़ गयी है। ख़ुद बिगुल संवाददाता को स्टील लाईन में कम वेतन व महीने में कम काम मिलने के कारण निर्माण क्षेत्र में प्लास्टर ऑफ़ पेरिस के काम में लगा दिया गया है। काम से हाथ धोने का डर इस कदर बढ़ गया है की लोग छुट्टी के अलावा और किसी दिन भी काम नही छोड़ रहे हैं। वज़ीरपुर में इस कारण चार-पाँच चाय की दुकानें भी बन्द हो गई है। मन्दी के इस दौर में कई जगह मालिको को मज़दूर का शोषण करने का एक मौक़ा मिल जाता है, ऐसे में जहाँ मज़दूर पहले 250 पीस किसी माल का उत्पादन कर रहे थे तो उनसे 300 पीस निकालने की माँग की जा रही है। यानी मालिक की जो मुनाफ़े की दर गिर रही है उसे बचाने के लिए वह मज़दूरों को अधिक से अधिक लूट रहा है। वहीं कई जगह महिला मज़दूरों से भी ज़बरन देर तक रात के नौ बजे तक काम लिया जा रहा है। और महिलाये आवाज़ नही उठा सकती क्योंकि काम से निकले जाने का डर है। एक चीज़ और इलाके काम की कमी के कारण चोरी से लेकर पॉकेटमारी जैसी घटनाओं की संख्या में काफ़ी वृद्धि हुई है।

वज़ीरपुर में सक्रिय क्रान्तिकारी यूनियन दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन से पता चला कि मालिकों ने इस बीच मज़दूरों पर भयंकर दमन किया है। पर दूसरी तरफ़ इस दौरान नकली लाल झण्डे वाली यूनियनों ने जमकर दलाली की है। मज़दूरों के जीवन की हालात पर ये लोग न सिर्फ मज़दूरों की मृत्यु में भी पैसा खाने का मौका देख रहे हैं। जहाँ मालिकों ने लगातार छँटनी और तालाबन्दी और मज़दूरों का वेतन कम किया है और काम में सघनता को बढ़ाया है। तो तमाम तथाकथित क्रान्तिकारियों की यूनियनों ने इस दौरान जो ग़द्दारी दिखाई है उसपर हमें अचरज नहीं होना चाहिए क्योंकि इन यूनियनों की आक़ा पार्टियों ने जनता को धोखा देने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। छँटनी होने पर, मज़दूर के साथ मारपीट होने पर या मज़दूर की करण्ट लगने से होने वाली मौतों पर ग़द्दार यूनियन नेताओं ने मालिकों पर मुकदमा दर्ज करने से ज़्यादा ज़ोर मामले को थोड़ा बहुत पैसा देकर रफ़ा-दफ़ा करने पर दिया है। संशोधनवादी नकली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ इस व्यवस्था की ही सुरक्षा पंक्ति हैं और मन्दी के दौर में जब मालिक और मज़दूरों के बीच टकराव की स्थिति विस्फोटक होती जा रही है तो ये हर क़दम पर पानी की छींटे मारकर संघर्ष की जगह समझौतों का रास्ता अख़्तियार करते हैं। हाल ही में ऐसा ही घटनाक्रम आम आदमी पार्टी से निगम पार्षद विकास गोयल की फ़ैक्ट्री में मज़दूर की सुरक्षा के इन्तज़ाम की कमी की वजह से हुआ जिसपर नक़ली लाल झण्डे वाली ट्रेड यूनियनों ने मुक़दमे को रफा-दफ़ा करने की कोशिश की और दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन द्वारा श्रम विभाग पर प्रदर्शन के बाद ही निगम पार्षद का नाम पुलिस केस में जोड़ने का समन पुलिस थाने को भेजा गया जिसके बाद पुलिस ने विकास गोयल से पूछताछ भी की है।

आज फैली आर्थिक मन्दी के मामले में तमाम तथाकथित क्रान्तिकारी पार्टियों के चरित्र की पड़ताल की जा सकती है। हालाँकि फ़ैक्ट्री इलाक़ों में तमाम संशोधनवादी पार्टियों की यूनियनों का चरित्र इन्हें बेनक़ाब कर देता है, समय समय पर इनकी राजनीतिक अवस्थिति इनकी विचारधारात्मक पतन को दर्शा देती है। परन्तु हमें हर मौक़े पर इनकी हक़ीक़त को मज़दूरों के बीच बेनक़ाब करते रहना होगा।

मन्दी के सवाल पर जो पोज़ीशन आज सीपीएम, सीपीआई और सीपीआईएमएल (लिबरेशन) ले रही है वह इनके राजनीतिक पतन को दर्शाती है। बीती 20 सितम्बर को भारत की संशोधनवादी पार्टियों की एक सामूहिक बैठक हुई जिसमें गहरी आर्थिक मन्दी में डूबी और संकट की आग़ोश में घिर रही अर्थव्यवस्था की हालात पर चिन्ता व्यक्त की गई। यह चिन्ता आम जनता के ऊपर बोझ डाल रहे पूँजीपति वर्ग के जीवन पर पड़ रही मार के साथ-साथ में पूँजीवाद की सेहत के लिए भी व्यक्त की गई! इस कन्वेंशन में कहा गया कि भारत की अर्थव्यवस्था की गम्भीर हालात के लिए मोदी सरकार की ग़लत नीतियाँ ज़िम्मेदार हैं और मोदी 'बुरे' (क्रोनी) पूँजीवाद की सेवा करते हुए अपने कुछ ख़ास बड़े पूँजीपति मित्रों को मदद पहुँचा रहे हैं, बस समस्या यही है। सीपीएम, सीपीआई, सीपीआईएमएल (लिबरेशन) व अन्य पार्टियों का मक़सद सार्वजनिक निवेश योजनाओं के ज़रिये स्थानीय माँग को बढ़ाकर संकट से व्यवस्था को निजात दिलाना है। परन्तु सभी अल्प उपभोगवादी भूल जाते हैं कि यह संकट इस व्यवस्था का आंतरिक अन्तरविरोध है जिससे निजात इसे ख़त्म कर ही मिल सकता है। अल्प उपभोग इस व्यवस्था के संकट का कारण नहीं बल्कि केवल लक्षण है। वास्तविक कारण मुनाफ़े का संकट है जिसके कारण ही अल्प उपभोग और अतिउत्पादन प्रकट होता है। किसी नीमहकीम नुस्ख़े से संकट से निजात नहीं मिल सकता है।

2008 के बाद से यह बात बार-बार साबित हुई है परन्तु इन संशोधनवादी पार्टियों से इस परिघटना से निष्कर्ष निकालने की उम्मीद करना ही ग़लत होगा। असल में क्रान्तिकारी ताकतों के समक्ष यही वह मौका है जब हमें मेहनतकश जनता के सामने इस व्यवस्था की निरर्थकता को उजागर करना चाहिए। हमें जनता पर मन्दी का बोझ डाल रही सरकार के ख़िलाफ़ अपनी माँगें उठानी चाहिए। परन्तु इसे बाज़ार में माँग बढ़ाकर पूँजीवाद को 'संजीवनी' देने के ख़याल से नहीं बल्कि पूँजीवाद की चौहद्दियों को स्पष्ट करते हुए समाजवाद का विकल्प पेश करते हुए किया जाना चाहिए। आज अगर ये यूनियनें मज़दूरों की मौत पर दलाली खाने तक पहुँच गयी हैं, तो इसके लिए क्रान्ति को तिलांतलि दे चुकी संशोधनवादी विचारधारा ही ज़िम्मेदार है।

– संवाददाता

गुड़गाँव ऑटोमोबाइल पट्टी में जगह-जगह मज़दूरों का संघर्ष जारी है!

कंसाई नेरोलेक (बावल) में काम से हटाये गये मज़दूरों का संघर्ष और मैनेजमेंट की घटिया चालें

कंसाई नैरोलेक पेंट्स लिमिटेड के बावल (ज़िला रेवाड़ी, हरियाणा) प्लाण्ट के करीब 250 ठेका मज़दूरों को श्रम विभाग के समक्ष लिखित समझौते के बावजूद कम्पनी में अभी तक काम पर वापस नहीं लिया जा रहा है। कम्पनी बदले की भावना से एक के बाद एक नया बहाना गढ़ के हड़ताल में शामिल अधिकांश ठेका मज़दूरों समेत अन्य ठेका मज़दूरों को काम पर वापस नहीं ले रही है।

कंसाई नेरोलेक पेंट्स लिमिटेड बिनौला प्लाण्ट के स्टोर में कच्चे माल की देखरेख करने वाले ठेका एजेंसी सीएफए व बीपी सर्विसेज़ के क़रीब 60 ठेका मज़दूर पिछली 11 सितम्बर को वेतन बढ़ोतरी, जैकेट, हाज़िरी संबंधी माँगों को लेकर हड़ताल पर चले गये थे। लेकिन उसी दिन बी 'शिफ्ट' में दोबारा प्लाण्ट में काम भी शुरू कर दिया था। लेकिन अगले दिन सुबह मॉगें न माने जाने पर ठेका मज़दूरों (ऑपरेटर) ने फिर से काम बन्द कर दिया था। इस पर कम्पनी की स्वतंत्र पंजीकृत यूनियन ठेका मज़दूरों के समर्थन आ गई और प्रबन्धन से बात करने की कोशिश की। लेकिन प्रबन्धन ने बदले की भावना से अगले दिन तमाम ठेका मज़दूरों व परमानेंट मज़दूरों को बाहर करके गैर-क़ानूनी तरीक़े से बिना नोटिस दिये लॉक-आउट कर दिया। कम्पनी प्रबन्धन ने ऐसा करके एक तीर से दो निशाने लगाये। एक तो ठेका मज़दूरों की माँगों को लागू करने के बजाय ठेका मज़दूरों को बाहर का रास्ता दिखा दिया, दूसरा समर्थन में आयी मज़दूर यूनियन के समझौता पत्र को टालने में फिर से कामयाब हो गये। यूनियन के प्रधान और संगठन सचिव को निलम्बित कर दिया गया है।

श्रम विभाग के समझौता अधिकारी के समक्ष लिखित समझौता होने के बावजूद अच्छे व्यवहार का निर्वाह पत्र ('गुड कंडक्ट अंडरटेकिंग') फार्म भरवाने पर कम्पनी अड़ गयी जिसका समझौता पत्र में कोई ज़िक्र नहीं था, इसे सभी मज़दूरों ने एक सुर से नकार दिया था। लेकिन कम्पनी अपनी मनमर्जी के 'गुड कंडक्ट अंडरटेकिंग' पर अड़ी रही। उस पर हस्ताक्षर करने पर ही मज़दूरों को अन्दर लिया गया। श्रम विभाग कह रहा है कि लिखित समझौते का पालन करते हुए सभी ठेका मज़दूरों को काम पर रखवाया जायेगा। लेकिन कम्पनी तरह-तरह के बहाने बनाते हुए मज़दूरों को अन्दर नहीं ले रही है। मज़दूरों पर खाने-खर्चे का बोझ बढ़ रहा है लेकिन कम्पनी अपने तानाशाही व बदले की भावना के रवैये पर अड़ी हुई है। मज़दूरों ने बताया कि जब सभी मज़दूर बाहर थे तो कम्पनी ने चालाकी से नये व ग़ैर-अनुभवी ठेका मज़दूरों को काम पर रख लिया था, जिसकी वजह से कम्पनी में कोई भी हादसा हो सकता है, और दो बार सेफ्टी आलार्म भी बज चुका है और कई नये ठेका वर्कर ज़बर्दस्ती काम पर रोकने के कारण काम छोड़ चुके हैं। कुछ को तो दीवार कूद कर भागना पड़ा था।

ठेका मज़दूरों के प्रति ऐसा ही रवैया शिवम ऑटोटेक लिमिटेड, बावल (गुड़गाँव), डाईकिन एयरकंडिशनिंग कम्पनी (नीमराना, राजस्थान), ऑमैक्स (धारुहेड़ा), मारुति (मानेसर) आदि कम्पनियों के प्रबन्धन रहा है। देखा यही गया है कि कम्पनियाँ ऐसे संघर्ष की स्थिति में ठेका मज़दूरों को वापस नहीं लेतीं। ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन जो संघर्ष में शामिल रही है, उसका मानना है कि ऐसी बुरी स्थिति में ठेका व स्थायी मज़दूरों को अपनी एकता बनाये रखनी होगी और निराशा के बजाय संघर्ष के लिए तैयार रहना होगा। मज़दूर चाहे इस कम्पनी में काम करे या अन्य किसी कम्पनी में, मालिकों/प्रबन्धन की तानाशाही के चलते श्रम क़ानूनों का उल्लंघन, ठेका प्रथा के ख़िलाफ़ निणार्यक संघर्ष की तैयारी आज से ही करनी होगी। आज इस कम्पनी तो कल दूसरी कम्पनी में यही समस्याएँ, इसका मुकाबला ऑटो सेक्टर की सेक्टरगत (पेशा आधारित) यूनियन और इलाक़ाई एकता के दम पर किया जा सकता है। दूसरा, नेरोलेक के विभिन्न प्लाण्टों के मज़दूरों को तालमेल बना कर रखना होगा और आसपास के इलाक़े के आम मेहनतकश और जागरूक व इंसाफ़पसन्द आबादी को भी साथ लेना होगा। इलाके व सेक्टर के तमाम मालिक, प्रबन्धन, ठेकेदार तथा उनके साथ खड़े होने वाली राजनीतिक, प्रशासनिक ताकतें मज़दूरों के ख़िलाफ़ एकजुट हैं। हमें भी अपनी एकता को मज़बूत बनाना होगा। इसके बिना हम मालिकों को मोलभाव में झुका नहीं सकते। इसके लिए हमें संघर्ष के दोनों रूपों यानी ज़मीनी संघर्ष और क़ानूनी संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए।

शिवम ऑटो टेक लिमिटेड में लिखित समझौते को लागू करवाने के लिए संघर्ष जारी है!

पिछली 21 अगस्त से शिवम ऑटो टेक लिमिटेड (एस.ए.टी.एल) के मज़दूर अपनी माँगों को लेकर लेकर दिल्ली-जयपुर हाईवे एनएच-8 पर स्थित औद्योगिक क्षेत्र, बिनौला में धरने-प्रदर्शन पर बैठे हुए थे जिसकी रिपोर्ट बिगुल के पिछले अंक में दी गयी थी। फरवरी-मार्च में प्रशासन ने मज़दूरों को निलम्बित कर दिया था और उनके मानेसर, रोहतक, हरिद्वार, बंगलौर तक तबादले करने शुरू कर दिये गये थे।

एस.ए.टी.एल के मज़दूरों की माँग थी कि लम्बित माँगों पर समझौता वार्ता जल्द से जल्द करायी जाये। बदले की भावना से ग़ैर-क़ानूनी तरीके से गलत व्यवहार का दोष लगाकर निलम्बित किए गए 45 मज़दूरों को वेतन सहित काम पर वापस लिया जाये जिसमें 5 कार्यिकारिणी सदस्य भी शामिल थे तथा तीसरा मज़दूरों का तबादला रद्द किया जाये।

एस.ए.टी.एल यूनियन के महासचिव मुकेश यादव ने बताया कि त्रि-पक्षीय लिखित समझौता हो गया और मॉगें भी मान ली गयीं लेकिन तीन हफ़्ते बीतने के बावजूद इसे लागू नहीं किया गया। बात-बात पर मज़दूरों को परेशान और उनके साथ गाली-गलौच किया जा रहा है। दूसरी तरफ श्रम विभाग हर बार कोई बहाना करके यूनियन की बात को सुन ही नही रहा है और न ही लिखित समझौते को लागू करवाने के लिए कम्पनी पर दबाव बना रहा है। महासचित ने स्पष्ट किया कि अगर कम्पनी अपने रवैये पर अड़ी रही तो जल्द से जल्द अन्य यूनियनों से मिलकर संघर्ष को तेज़ कर दिया जायेगा।

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन शिवम ऑटो टेक मज़दूरों के साथ लगातार सम्पर्क में है और मज़दूरों को सतर्क रहने के लिए कहा है क्योंकि पिछले कई सालों के अनुभव ने यह बताया है कि कम्पनी प्रबन्धन लिखित समझौते को लागू नहीं करने तथा नया समझौता करने में देरी करने के लिए कई तरह की तिकड़में करता है। और मज़दूरों को नौकरी का डर, ट्रांस्फ़र का डर पैदा करके या उकसावे की कार्यवाही करके यूनियन बॉडी को सस्पेंड करने की घिनौनी चाले चलने में भी नहीं चूकती हैं। ऐसे में सावधानी के साथ और तैयारी के साथ हमें व्यापक एकता को बनाकर रखना होगा और हर चाल को पहले से समझना होगा।

– शाम मूर्ति

कश्मीरी क़ौमी संघर्ष समर्थन कमेटी, पंजाब के आह्वान पर

पंजाब में हज़ारों लोग कश्मीरी जनता के हक़ में सड़कों पर उतरे

15 सितम्बर को पंजाब में कश्मीरी कौम के हक़ में इतनी ज़ोरदार आवाज़ उठी कि 40 दिनों से बहरे बने बैठे पूँजीवादी मीडिया को भी सुननी पड़ गई। ''कश्मीर कश्मीरी लोगों का, नहीं हिन्द-पाक की जोकों का'' और ''पंजाब से उठी आवाज, कश्मीरी संघर्ष ज़िन्दाबाद'' के नारों के साथ पंजाब के हज़ारों मज़दूरों, किसानों, छात्रों, नौजवानों व बुद्धिजीवियों के जब 15 सितम्बर की सुबह चण्डीगढ़/मोहाली की तरफ काफ़िले जाने शुरू हुए तो इस आवाज़ ने हुक्मरानों के लिए खौफ़ खड़ा कर दिया। पंजाब में उठी यह आवाज़ दमन और प्रतिरोध की आग में तप रहे कश्मीरी जनता के लिए हवा के ठण्डे झोंके की तरह है। कश्मीरी जनता के लिए इस तरह ज़ोरदार आवाज़ बुलन्द करके पंजाब के जनवादी जनान्दोलन ने अपनी जनवादी व जुझारू रवायतों को बरकरार रखा है।

5 अगस्त को कश्मरी को विशेष दर्जा देने वाली धाराएँ धारा 370 व 35 ए खत्म करके व कश्मीर के दो टुकड़े कर दिये गये। अनेकों पाबन्दियाँ थोप दी गयीं। वहाँ इण्टरनेट, मोबाइल सेवाएँ बन्द कर दी गयीं। कर्फ्यू लगा कर आम जनजीवन को ठप्प कर दिया गया। यह फैसला वास्तव में सन् 1947 से ही जबरन गुलाम बनाये गये कश्मीर को फौजी दमन के ज़रिए भारत का हिस्सा बनाये रखने की नीतियों का ही अगला क़दम है। इस अरसे के दौरान कश्मीरी जनता की हर अधिकारपूर्ण आवाज़ को कुचला गया है, नब्बे हज़ार से अधिक लोग कत्ल किये गये हैं, हज़ारों लापता हुए, हज़ारों बच्चे यतीम हुए, हज़ारों औरतों का बलात्कार किया गया। इन दमन की नीतियों को आगे बढ़ाते हुए ही कश्मीरी जनता की आज़ादी की आकांक्षा को कुचलने के लिए धारा 370 व 35 ए को खत्म किया गया है।

भारतीय हुक्मरानों द्वारा दमन के खिलाफ़ जूझ रहे कश्मीरी लोगों के हक में समर्थन की आवाज़ बुलन्द करने के लिए 24 अगस्त को तर्कशील भवन, बरनाला, पंजाब में राज्य के 11 जनवादी जनसंगठनों ने इस गम्भीर मसले पर 'कश्मीरी कौमी संघर्ष समर्थन कमेटी, पंजाब' का गठन किया। इनमें टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन भारतीय किसान यूनियन (एकता उगराहां), पंजाब स्टूडेंटस यूनियन (ललकार), मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्ज यूनियन, पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल), नौजवान भारत सभा, पंजाब

खेत मज़दूर यूनियन, कारखाना मज़दूर यूनियन, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (शहीद रन्धावा), कारखाना मज़दूर यूनियन व नौजवान भारत सभा संगठन शामिल हुए। समर्थन कमेटी का यह मानना है कि ताज़ा हमला पिछले 72 वर्षों से कश्मीरी क़ौम के ख़िलाफ़ जारी जंग का ही अंग है और इसके ज़रिए हमला और तेज़ कर दिया है, और इस मसले का हल आत्मनिर्णय की माँग पूरी होने के साथ, जिसके लिए कश्मीरी कौम जूझ रही है, पूरी होने से ही हो सकता है। इसलिए सिर्फ धारा 370 व 35 ए ख़त्म करने का विरोध करने की जगह कश्मीरी कौम के आत्मनिर्णय की माँग को मुख्य माँग के तौर पर उभारने का फैसला किया गया। और इसके साथ ही धारा 370 व 35 ए बहाल करने, कश्मीर से फ़ौज वापिस बुलाने, कश्मीरी जनता का दमन बन्द करने, आर्थिक लूट बन्द करने, आफस्पा हटाने, सभी पाबन्दियाँ हटाने, गिरफ़्तार लोगों को रिहा करने की माँगें उठायी गयीं। समर्थन कमेटी ने फैसला किया कि इन माँगों के समर्थन में पंजाब के मज़दूरों-मेहनतकशों, किसानों, नौजवानों, छात्रों को लामबन्द करने के लिए 1 लाख की संख्या में पर्चा व 26500 पोस्टर छापा जाएगा। पंजाब भर में कश्मीरी जनता के हक में भारतीय हुक्मरानों के दमनकारी हमले के खिलाफ़ मुहिम चलाते हुए जम्मू-कश्मीर की वास्तविक तस्वीर को जनता के सामने लाया जायेगा। ज़मीनी स्तर से मीटिंगें, नुक्कड़ सभाएँ, रैलियों जैसी गतिविधियाँ चलाते हुए 3 से 10 सितम्बर तक पंजाब में विभिन्न ज़िलों/तहसीलों में रोष प्रदर्शन, कन्वेंशन करने का फ़ैसला किया गया। 15 सितम्बर को मोहाली में विशाल रैली करके चण्डीगढ़ में रोष मार्च करने का ऐलान किया गया।

संगठनों के अन्दर शिक्षादायक मीटिंगों के सिलसिले के जरिए इस अभियान को कतारों का हिस्सा बनाते हुए इस मुहिम की शुरुआत की गई। लोगों को बताया गया कि किस तरह भारतीय व पाकिस्तानी हुक्मरान कश्मीरी कौम का दमन करते आए हैं। पंजाबी जनता में अपने साथ हुई क़ौमी बेइंसाफ़ी के कारण कश्मीरी कौम के साथ गहरी हमदर्दी व भारतीय हुक्मरानों के खिलाफ़ नफ़रत है। पंजाब की अवाम कश्मीरी जनता के दर्द को महसूस करती है। हालांकि हुक्मरानों द्वारा प्रचारित 'अखण्ड भारत' के नारों के कारण बहुत से लोगों को आत्मनिर्णय की माँग अजीब लगती है लेकिन कश्मीर के इतिहास व भारतीय हुक्मरानों द्वारा उनके साथ किए धोखे के बारे में जानकर वे आत्मनिर्णय की जनवादी माँग के साथ सहमत हो जाते हैं।

इन तैयारियों के साथ 3 से 10 सितम्बर तक संगरूर, मोगा, पटियाला, अमृतसर, बरनाला, मुक्तसर, मानसा, फरीदकोट, लुधियाना, तरनतारन, बठिंडा, नकोदर व ख़न्ना में जिला/ब्लाक स्तरीय रोष प्रदर्शन किए गए। इनमें 7000 से अधिक मज़दूर, किसान, छात्र, नौजवान, बुद्धिजीवियों आदि ने हिस्सा लिया। इन प्रदर्शनों में कश्मीरी जनता के प्रति जनता में दिलों में मज़बूत हमदर्दी सामने आई।

पंजाब में इस मुहिम के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए 15 सितम्बर को मोहाली/चण्डीगढ़ में होने जा रही विशाल रोष प्रदर्शन पर पंजाब की कांग्रेस सरकार ने पाबन्दी लगा दी। इस पाबन्दी के साथ कांग्रेस पार्टी का वास्तविक चेहरा भी नंगा हो गया। कांग्रेस पार्टी दिखावे के तौर पर कश्मीर मसले पर केन्द्र सरकार का विरोध कर रही थी। पंजाब की कांग्रेस सरकार के दमनकारी कदम ने साबित कर दिया कि हुक्मरान वर्ग की सभी पार्टियाँ कश्मीर मसले पर एकमत हैं। कश्मीरी कौमी संघर्ष समर्थन कमेटी, पंजाब मोहाली में प्रदर्शन के लिए अर्जी को यह कहकर रद्द कर दिया गया कि इससे जन सुरक्षा को खतरा पैदा होगा। मोहाली में टैंट लगा रहे टैंट मालिक को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। लेकि जनसंगठनों के दबाव तले पुलिस अपने वाहन से उसे घर तक छोड़ने भी पहुँची। सरकारी पाबन्दियों को न मानने का ऐलान करते हुए समर्थन कमेटी ने कहा कि 15 सितम्बर की रैली रद्द नहीं की जाएगी।

पंजाब व चण्डीगढ़ पुलिस ने 14 सितम्बर को ही जगह-जगह नाकाबन्दी कर दी। 15 सितम्बर को तो सुबह चार बजे से जगह-जगह नाकाबन्दी और बढ़ा दी गयी। ट्रांसपोर्टरों को धमकाया गया। इस तरह की गई नाकाबन्दी के खिलाफ़ आक्रोशित किसानों, ग्रामीण व खेत मज़दूरों, नौजवानों, छात्रों, स्त्रियों द्वारा पंजाब के 10 जिलों में 16 जगहों पर सड़कों पर बड़े जाम लगाकर केन्द्र व पंजाब सरकार के खिलाफ़ प्रदर्शन किए गये। मोदी व कैप्टन अमरिन्दर सिंह की अर्थियाँ जलायी गयीं। इसके अलावा पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार) व नौजवान भारत सभा के नेतृत्व में सारी पाबन्दियों को चीर कर मोहाली पहुँचे लोगों ने ज़ोरदार आवाज़ बुलन्द की। दशहरा ग्राऊँड पहुँचे लोगों में से 30 लोगों को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। इनमें 10 लड़कियाँ भी थीं। इसी तरह मोहाली रेलवे स्टेशन पहुँचे लगभग 200 औद्योगिक मज़दूरों, नौजवानों, छात्रों को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। इनमें भी काफी संख्या में स्त्रियाँ शामिल थीं। समर्थन कमेटी ने ऐलान कर दिया कि अगर गिरफ़्तार लोगों को नहीं छोड़ा गया तो सड़कों पर जाम जारी रहेंगे। जनदबाव के चलते सभी गिरफ़्तार लोगों को छोड़ने पर पुलिस को मजबूर होना पड़ा।

इस तरह कश्मीरी क़ौम के हक़ में पंजाब से बुलन्द हुई आवाज़ को दबाने में हुक्मरान पूरी तरह नाकाम रहे। चण्डीगढ़/मोहाली में होने वाली रैली पर पाबन्दी लगा कर हुक्मरानों ने खुद अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली। पंजाब में बड़े स्तर पर सरकार के क़दम की निन्दा हुई। कई दिनों तक अखबारों-चैनलों-सोशल मीडिया पर रैली पर पाबन्दी की चर्चा रही। 15 को जगह-जगह तैनात पुलिस बल, नाकाबन्दियों, मोहाली-चण्डीगढ़ को पुलिस छावनी में बदलने, सड़के जाम होने, बड़े स्तर पर प्रदर्शन, इन प्रर्दशनों की बड़े स्तर अखबारों, टी.वी./इण्टरनेट चैनलों, सोशल मीडिया पर बड़ी स्तर पर चर्चा आदि के कारण पंजाब के लोगों में और भी बड़े स्तर पर कश्मीर के हक़ में उठ रही आवाज़ की चर्चा थी। पंजाब के बाहर भी बड़े स्तर पर इन प्रदर्शनों ने ध्यान खींचा। अगर बिना रोक-टोक के मोहाली/चण्डीगढ़ में रैली हो जाती तो इतने बड़े स्तर पर कश्मीरी क़ौमी संघर्ष के हक़ में देश-दुनिया तक पंजाब से उठी यह आवाज न पहुँच पाती।

विभिन्न जगहों पर हुए प्रदर्शनों को सम्बोधित करते हुए वक्ताओं ने कहा कि इस मुहिम के दौरान पंजाब की मेहनतकश जनता ने यह समझा है कि देश में धर्मों-जातियों-क्षेत्रों के बँटवारे से ऊपर उठकर सभी मज़दूरों-मेहनतकशों में एक सांझापन है जो देश के हुक्मरानों के दमन, जुल्मों व लूट के खिलाफ़ उनकी ताकत है। लोगों ने इस एकजुटता की ताकत को पहचाना है जिससे हुक्मरान वर्गों को खौफ आता है। अपनी इस ताकत के ज़रिए ही उन्हें बहुत से न्याय-युद्ध लड़ने हैं और जीतने हैं।

– लखविन्दर

टेक्सटाइल और हौज़री मज़दूरों ने मज़दूर पंचायत आयोजित की

लुधियाना के टेक्सटाइल और हौज़री मज़दूरों के संगठन टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन द्वारा 01 सितंबर को ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, ताज़पुर रोड़ लुधियाना पर स्थित मज़दूर पुस्तकालय में मज़दूर पंचायत बुलाई गई। अलग-अलग कारख़ानों से पहुँचे मज़दूरों और यूनियन के अगुवाओं ने मज़दूरों के हालात के बारे में कारख़ानों के अंदर होने वाली धक्केशाही के बारे में विचार रखे। वक्ताओं ने कहा कि टेक्सटाइल और हौज़री मज़दूर बहुत बुरे हालातों का सामना कर रहे हैं। महँगाई तेज़ी से बढ़ती जा रही है, पर आमदनी नहीं बढ़ रही है। मालिक वेतन/पीसरेट नहीं बढ़ा रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि टेक्सटाइल और हौज़री कारख़ानों के मालिकों द्वारा श्रम कानूनों को लागू नहीं किया जा रहा व जिन कारख़ानों में मज़दूरों ने संघर्ष करके कुछ सुविधाएँ हासिल की थी उनपर भी कटौती की जा रही है। मालिक बेहिसाब मुनाफ़ा कमा रहे हैं, दूसरी तरफ़ मज़दूर बुरे हालातों में रहने के लिए मजबूर हैं। सरकार, श्रम विभाग सभी आंखें बन्द करके बैठे हैं।

पंचायत में यूनियन की कमेटी ने मज़दूरों की अहम माँगों पर एक माँगपत्र पेश किया व विचार-विमर्श के बाद शामिल सभी मज़दूरों ने इस माँगपत्र पर सहमति प्रकट करते हुए यह फ़ैसला लिया कि आने वाले दिनों में मालिकों एवं श्रम विभाग को यह पत्र सौंपा जाएगा। इस माँगपत्र में ये माँगें रखी गईं - बढ़ी महँगाई को देखते हुए पीस रेट/वेतन में 25 प्रतिशत की वृद्धि, मज़दूरों के किए काम के पैसे दबाना, गाली-गलौज व मार-पीट करना बंद किया जाए, वेतन व एडवांस सरकारी नियम के हिसाब से 7/22 तारीख़ तक दे दिया जाए, सभी मज़दूरों के फैक्ट्री पहचान-पत्र, हाजिरी कार्ड जारी किए जाएँ, कारख़ानों में मस्टर रोल भरा जाए और हर महीने वेतन पर्ची दी जाए, जिन मज़दूरों के ई.एस.आई. कार्ड बंद कर दिए गए हैं उन्हें तुरन्त लागू किया जाए व जिनके कार्ड अभी नहीं बनाए गए हैं उन्हें भी जल्द से जल्द यह सुविधा उपलब्ध करवाई जाए, सालाना राष्ट्रीय त्योहारों और कैजुअल छुट्टियाँ वेतन सहित दी जाएँ, पहली मई की छुट्टी भी वेतन सहित अनिवार्य दी जाए, ई.पी.एफ़. की सुविधा लागू की जाए, स्त्री मज़दूरों को पुरुष मज़दूरों के बराबर काम का बराबर वेतन/पीस रेट दिया जाए, कारख़ानों में महलाओं के साथ अभद्र व्यवहार व छेड़छाड़ पर रोक लगाई जाए, कारख़ानों में मज़दूरों की सुरक्षा के पूर्ण प्रबन्ध किए जाएँ और हादसा होने की सूरत में उचित मुआवजा मिलने की गारण्टी की जाए, कारख़ाने के भीतर साफ़-सुथरे पखाने बनाए जाएँ, स्त्री और पुरुष के लिए अल्ग-अल्ग पखाने बनाए जाएँ, गन्दा पानी पीने के व गन्दी हवा के कारण अक्सर मज़दूर बीमार रहते हैं, कारख़ाने के भीतर साफ़ पानी व एग्ज़ॉस्ट फ़ैन की सहूलियत दी जाए। उपरोक्त माँगों सहित कारख़ानों में सभी श्रम कानून लागू किए जाएँ।

मज़दूर पंचायत ने यह फैसला लिया कि अगर मालिकों ने मांगे नहीं मानी तो संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए और तीखा किया जाएगा। मज़दूर अगुवाओं ने ऐलान किया कि जब तक मालिक मज़दूरों की जिंदगी बेहतर बनाने के लिए प्रयास नहीं करते, श्रम कानून लागू नहीं करते, तब तक संघर्ष चलता रहेगा। मज़दूर पंचायत में हुई विचार-चर्चा में मज़दूर यूनियन के प्रधान राजविंदर, ताज मोहम्मद, घनश्याम, बलजीत कौर, रविंदर मेहरवान, सिकंदर, अशोक, काशी सहित लगभग एक दर्जन मज़दूरों ने अपनी बात रखी।

मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में किये गये मज़दूर-विरोधी बदलावों के मायने

- वृषाली

मोदी सरकार ने पिछले कार्यकाल से ही जनता के अधिकारों पर हमले करते हुए कई क़ानूनों में बदलाव किये थे। इन हमलों में सबसे बड़ा निशाना देश की मज़दूर आबादी रही है। श्रम क़ानूनों को लचीला कर मालिकों के हक़ में करने की प्रक्रिया में मोदी सरकार ने 44 श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने का फ़ैसला लिया है। इन 44 श्रम क़ानूनों की जगह अब 4 श्रम संहिताएँ (लेबर कोड) - मज़दूरी संहिता, औद्योगिक सुरक्षा और कल्याण संहिता, सामाजिक सुरक्षा संहिता और औद्योगिक सम्बन्ध संहिता - लागू की जायेंगी। मोदी सरकार के इस फ़ैसले को मज़दूर हित में लिया फ़ैसला साबित करने के लिए भाजपा के नेता और दलाल मीडिया एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाये हुए हैं। श्रम संहिताओं के प्रचार का बीड़ा उठाये केन्द्रीय श्रम और रोज़गार मन्त्री संतोष गंगवार वही महानुभाव हैं जिनका मानना है कि देश में 'बेरोज़गारी' कोई मसला ही नहीं है और यह कि उत्तर भारत में 'नौकरी की नहीं, योग्य लोगों की कमी है'। ज़ाहिर है ये श्रम संहिताएँ मन्दी के इस दौर में मज़दूरों की हितों की नुमाइन्दगी करने के लिए नहीं बल्कि उनके श्रम की लूट को और आसान बनाने को क़ानूनी जामा पहनाना मात्र हैं।

श्रम संहिताएँ मालिकों के लिए इस हक़ को सुनिश्चित करेंगी कि मालिक अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ मज़दूरों को काम पर रख सकें और जब चाहें उन्हें मशीन के पुर्ज़े की तरह काम से बाहर निकाल सकें। साथ ही श्रमिकों को बेरोज़गारों की एक रिज़र्व आर्मी में बदल दिया जायेगा जो सस्ते दरों पर भी काम करने को तैयार हो। स्थायी प्रकृति के रोज़गार को ख़त्म कर ठेकेदारी प्रथा को और भी धड़ल्ले से लागू किया जायेगा। ओवरटाइम के घण्टों पर कोई पाबन्दी नहीं होगी। नये कारख़ानों को अब पंजीकरण के लिए अलग-अलग दफ़्तरों के चक्कर नहीं काटने पड़ेंगे। इन श्रम संहिताओं के तहत कार्यस्थल निरीक्षण की पूरी प्रणाली को ख़त्म किया जाएगा। निरीक्षण मज़दूरों की शिकायतों के आधार पर नहीं होंगे। निरीक्षण की प्रक्रिया पूरी तरह से तकनीकी तौर पर होगी और यह कम्प्यूटर द्वारा तय किया जाएगा कि किस फैक्ट्री का निरीक्षण किया जाना है। यही नहीं, 'निरीक्षक अथवा फैसिलिटेटर का काम मालिकों द्वारा श्रम क़ानूनों के उल्लंघन पर कार्रवाई करना नहीं बल्कि श्रम क़ानूनों का पालन करने में उनकी 'मदद' होगा। श्रम क़ानूनों की अवमानना करने पर मालिकों को दण्ड देने या माफ़ करने का अधिकार भी इन निरीक्षकों के पास ही होगा। जिन निरीक्षकों के रहते पहले से ही व्यवस्था में भ्रष्टाचार के ज़रिये ऐसे तमाम 'निरीक्षणों' को नाटकीय रूप दिया जाता था वहाँ भ्रष्टाचार को खुली छूट ही सौंप दी गयी है।

सरलता की रट लगाते हुए एक नये प्राधिकरण के गठन का फैसला लिया गया है जो न्यायालय से पहले मामले के निबटारे के लिए हस्तक्षेप करेगा। न्यायालयों से कभी-कभार मज़दूरों के हक़ में फैसले आने की रही-सही उम्मीद की भी अब कोई जगह नहीं है। वहीं अन्तिम ज़िम्मेदारी अब प्रमुख नियोक्ता की जगह ठेकेदार की होगी। मतलब, न्यूनतम वेतन, बोनस आदि का भुगतान न होने पर ठेकेदार ही ज़िम्मेदार माना जायेगा। औद्योगिक दुर्घटनाओं से लेकर तमाम मामलों में मालिकों के जेल जाने का प्रावधान ही ख़त्म कर दिया गया है। साथ ही मज़दूर हितों की स्वयम्भू 'हिमायती' भाजपा सरकार ने राष्ट्रीय स्तर का न्यूनतम वेतन 10 जुलाई 2019 को घोषणा करके 178 रुपये प्रतिदिन कर है! सांसदों-विधायकों और अफ़सरों को गठरी भर-भर के तनख्वाहें और भत्ते देने वाली भाजपा चाहती है कि श्रमिक मात्र 178 रुपयों में अपनी हड्डियाँ गलायें। सरकार की विशेषज्ञ समिति ने जबकि अपनी ओर से 375 रुपये प्रतिदिन की सिफ़ारिश की थी।

श्रम संहिताओं का सबसे बुरा असर अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों, भवन निर्माण व प्रवासी मज़दूरों पर पड़ेगा। भवन एवं अन्य सन्निर्माण कर्मकार अधिनियम, 1996 को निरस्त कर सामाजिक सुरक्षा बिल में जोड़ने का मतलब 4 करोड़ भवन निर्माण मज़दूरों का पंजीकरण रद्द करना है। साथ ही 36 भवन एवं अन्य सन्निर्माण कर्मकार मण्डल ख़त्म कर दिए जायेंगे और पंजीकरण का काम निजी हाथों में सौंप दिया जायेगा। सामाजिक सुरक्षा के लिए मज़दूरों से ही ली जाने वाली राशि उनके सामर्थ्य से ही बाहर होगी। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार भारत में औसतन रोज़ाना 38 भवन निर्माण मज़दूरों की दुर्घटनाओं में मौत होती है। नयी श्रम संहिताओं के लागू होने के बाद मालिकों को मज़दूरों की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी से पूरी राहत मिलने के बाद ये संख्या और भी बढ़ जायेगी। वहीं प्रवासी मज़दूरों की बात करें तो सबसे ज्यादा शोषण उनका ही होता है क्योंकि उनका श्रम सबसे सस्ता होता है और मोलभाव की क्षमता सबसे कम।

इन तथाकथित श्रम सुधारों के क्या परिणाम होने वाले हैं इसका अन्दाज़ा राजस्थान सरकार द्वारा वर्ष 2014-15 में श्रम क़ानूनों में किये गये बदलावों के हश्र से लगया जा सकता है। इस वर्ष के आर्थिक सर्वेक्षण में राजस्थान सरकार द्वारा किये गये श्रम सुधारों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। लेकिन सरकार के ख़ुद के ही आँकड़े बता रहे हैं कि इन सुधारों के बाद से मज़दूरों की स्थिति बद सक बदतर हो गयी है। मज़दूरों की मज़दूरी, नौकरी की सुरक्षा और काम के दबाव सहित सभी पैमाने यह साबित कर रहे हैं कि इन सुधारों के बाद से मज़दूरों का जीवन और भी ज़्यादा असुरक्षित हो गया है। ग़ौरतलब है कि राजस्थान सरकार ने ठेका मज़दूर क़ानून की सीमा 20 से बढ़ाकर 50 मज़दूर कर दी थी। इस 'सुधार' के बाद से ठेके पर काम करने वाले मज़दूरों की संख्या में बहुत तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है। जहाँ 2014-15 में ठेका मज़दूरों की संख्या कुल मज़दूरों की 39.1 फ़ीसदी थी, वहीं 2016-17 में यह बढ़कर 42.5 प्रतिशत हो गयी। यही नहीं, इन 'सुधारों' के लागू होने के बाद राजस्थान में बेरोज़गारी की दर भी

(पेज 7 पर जारी)

बेटी बचाओ, भाजपाइयों से!

भाजपा नेताओं के कुकर्मों की शिकार हुई एक और बेटी

– रूपा

'बेटी के सम्मान में, भाजपा मैदान में' और 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे लुभावने नारों के शोरगुल के बीच इस देश की बेटियों के साथ लगातार होने वाली बर्बरता को छिपाने की तमाम कोशिशें की जा रही हैं। लेकिन 6 सालों में हुए स्त्री-विरोधी अपराध के आँकड़े चीख-चीख कर ये बता रहे हैं कि भाजपा सरकार के खोखले नारे महज़ वोट बटोरने की नौटंकी हैं। कठुआ और उन्नाव जैसी बर्बर,मानवद्रोही, स्त्री-विरोधी घटनाओं की याद अभी ताज़ी ही है कि एक नया प्रकरण हमारे सामने है।

यह घटना शाहजहाँपुर की है जहाँ सन्त समाज से आने वाले और भाजपा के पूर्व केन्द्रीय गृह राज्यमंत्री स्वामी चिन्मयानन्द पर कानून की छात्रा के साथ बलात्कार का आरोप है। चिन्मयानन्द पर यह आरोप पहली बार नहीं लगा है, इससे पहले भी उसके आश्रम में कई महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न की खबरें आती रही हैं। 2011 में भी एक साध्वी ने उस पर यौन उत्पीड़न का आरोप लगाया था। उस मामले में उसके ख़िलाफ़ चार्जशीट भी दायर हुई थी, लेकिन योगी आदित्यनाथ महाराज की कृपा से पिछले साल वह बरी हो गया था। चिन्मयानन्द और योगी आदित्यनाथ क़रीबी रिश्तों का एक लम्बा इतिहास है। 1980 के दशक में राम मन्दिर आन्दोलन के दौरान चिन्मयानन्द ने योगी आदित्यनाथ के गुरू महंत अवैद्यनाथ के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया था। दोनो ने मिलकर 'राम जन्मभूमि मुक्ति संघर्ष समिति' की स्थापना की थी। आगे चलकर चिन्मयानन्द ने योगी के भगवे दस्ते 'हिन्दू युवा वाहिनी' का काम शाहजहाँपुर में ही शुरू किया था।

कठुआ और उन्नाव काण्ड में इन फ़ासिस्टों ने जिस तरीके से अपराधियों को बचाने, उनके कुकर्म को ग़लत साबित करने का रवैया अपनाया, उससे कौन नहीं वाक़िफ़ होगा। लेकिन इसके बावजूद शाहजहाँपुर की ये बहादुर लड़की अपने साथ हुए बर्बरता के खिलाफ़ आवाज़ उठाती है। लेकिन उसका अंजाम क्या होता है? शिकायत दर्ज कराने के बाद भी चिन्मयानन्द की गिरफ़्तारी नहीं हुई, जबकि सुप्रीम कोर्ट का यह आदेश है कि बलात्कार जैसे मामलों में शिकायत के तुरन्त बाद गिरफ़्तारी होनी चाहिए। उसके बाद वह लड़की अपना वीडियों वायरल करती है, यहाँ तक कि सामने आकर प्रेस कान्फ्रेंस करती है, आत्मदाह करने की बात करती है तब जाकर कहीं चिन्मयानन्द की गिरफ़्तारी होती है, लेकिन बलात्कार की धारा के तहत मुक़दमा दर्ज़ नहीं किया जाता है। इस तरह से उस लड़की के हिम्मत को तोड़ने की कोशिश की जाती है, लेकिन वो हार नहीं मानती है।

चिन्मयानन्द ख़ुद ये स्वीकार भी कर चुका है कि उसने ऐसा कुकर्म किया, फिर भी उसपर बलात्कार की धारा नहीं लगायी जाती है, उसको पुलिस का एक वरिष्ठ अधिकारी अपनी कार में बैठाकर अस्पताल ले जाता है। दूसरी तरफ़ जब लड़की को धमकाने के मक़सद से उसपर स्वामी चिन्मयानन्द से पैसा माँगने का फ़र्जी आरोप लगता है, तब पुलिस उसे घसीटकर घर से ले जाती है, उसे ढंग से कपड़ा पहनने तक का मौक़ा नहीं दिया जाता है। पुलिस प्रशासन का घिनौना चेहरा यही बेनक़ाब हो जाता है। पुलिस प्रशासन का ये दोहरा बरताव यह दिखाता है कि वह वास्तव में किसकी सेवा करता है। एक तरफ़ एक बलात्कारी अस्पताल में मौज कर रहा है, दूसरी तरफ़ पीड़िता जेल की सलाखों के पीछे पहुँचा दी जाती है। तुरन्त मीडिया के सुर भी बदल जाते हैं। मीडिया में ख़ूब मिर्च-मसाला लगाकर इस ख़बर को बढ़ा-चढ़ा के पेश किया जाता है, और चिन्मयानन्द के अपराध को कम कर के दिखाने की कोशिश की जाती है।

उन्नाव और कठुआ में भी यही हुआ था। उन्नाव के भाजपा विधायक कुलदीप सिंह सेंगर की गिरफ़्तारी घटना से 13 महीने बाद हुई। पहले पीड़िता के पिता को जेल में पीट-पीट कर मार डाला गया। उसके बाद उसके पूरे परिवार को सड़क दुर्घटना में जान से मारने की कोशिश की गई और उत्तर प्रदेश की फ़ासिस्ट सरकार चुपचाप देखती रही। कठुआ के काण्ड को अभी बहुत ज़्यादा दिन नहीं हुए, जिसमें इन फ़ासिस्टों ने तिरंगा लेकर अपराधियों के समर्थन में रैलियाँ निकाली थी। मुँह में राम का नाम लेना और असलियत में अपराधियों, बलात्कारियों को शह देना इनके लिए बड़ी बात नहीं है।

पिछले साल देवरिया, मुज़फ़्फ़रपुर के बालिका संरक्षण गृहों में बच्चियों के साथ हुए दुष्कर्म मामले में कई भाजपा नेताओं का नाम आया। अभी हाल ही में एक भाजपा नेता सेक्स रैकेट में पकड़ा गया है। इतने सारे उदाहरण हमारे सामने हैं जो साबित करते है कि फ़ासीवादी भाजपा सरकार के लिए इस देश की बेटियों की सुरक्षा कोई मायने नहीं रखती। सुरक्षा तो दूर ये ख़ुद ही लड़कियों के सबसे बड़े दुश्मन हैं। एसोसिएशन फ़ॉर डेमोक्रेटिक रिफ़ॉर्म्स (एडीआर) के एक अध्ययन ने यह साफ़ दिखाया था कि देशभर में महिलाओं के ख़िलाफ़ जघन्य अपराधों में भाजपा के सांसद और विधायक अव्वल नंबर पर हैं।

दरअसल ऐसे अपराधियों, बलात्कारियों को शह देने, उनके अपराधों की लीपापोती करने का काम फ़ासिस्टों का अभी का नहीं है, इसका एक पूरा इतिहास है। ग़ौरतलब है कि हिन्दुत्व के विचारक सावरकर ने भी अपनी किताब 'भारतीय इतिहास के छह गौरवशाली युग' में, हिन्दू मर्दों द्वारा मुस्लिम औरतों के बलात्कार को न्याय संगत ठहराया था। दिल्ली में जब निर्भया काण्ड हुआ था तब मोहन भागवत से लेकर भाजपा के कई दिग्गज नेताओं ने घटिया बयान दिया था जो हर तरह से ऐसे कुकर्मों के लिए लड़की को ही ज़िम्मेदार ठहरा रहा था और औरतों को घर-गृहस्थी की चहारदीवारी में क़ैद करने की वकालत करता था।

अगर आप सोच रहे हैं कि अब भी आपकी बेटियाँ सुरक्षित हैं तो इस मुग़ालते में मत रहिये क्योंकि फ़ासिस्ट कभी भी कुछ भी कर सकते हैं। जब संसद और विधान सभा की शोभा बढ़ाने वाले संसद में बैठकर पोर्न मूवी देखते हुए पकड़े जाते हैं, तब उनसे महिला सुरक्षा की उम्मीद करना ख़ुद को धोखे में रखना है। 'बेटी के सम्मान में भाजपा मैदान में' इस नारे की असलियत इसी बात से लगाया जा सकता है कि 'निर्भया फण्ड' के लिए जो राशि आवण्टित की गई थी उसका एक-तिहाई हिस्सा भी अभी तक सरकार ख़र्च नहीं कर पायी। जबकि ऐसी घटनायें दिन दूनी रात चौगुनी दर से बढ़ रहीं हैं।

हिन्दुत्व के ये ठेकेदार, जो औरतों को बच्चा पैदा करने की मशीन और पुरूषों की दासी समझते हैं, उनसे भला ये उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वे बेटियों की सुरक्षा के पक्के इन्तज़ाम करेंगे? बेटियों के सुरक्षा का नारा तो सिर्फ़ वोट बटोरने की नौटंकी भर है। इनकी राजनीति समाज में घोर स्त्री-विरोधी पुरूष वर्चस्ववादी सोच को ही बढ़ावा देने का काम करती है और इनकी बीमार मानसिकता को दिखाती है। आज ज़रूरी है कि हम हर ऐसी घटना के प्रतिरोध में सड़कों पर उतरें और हर स्त्री-विरोधी सोच को चुनौती दें। क्योंकि अगर आज हम नहीं जागे तो ये बर्बर फ़ासिस्ट अपने हर कुकर्म को जायज़ ठहराने में क़ामयाब हो जायेंगे।

अभिजीत बनर्जी को नोबल पुरस्कार और ग़रीबी दूर करने की पूँजीवादी चिन्ताओं की हक़ीक़त

– सत्यम

भारत में पैदा हुए अभिजीत बनर्जी को अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार मिलने पर पूँजीवादी मीडिया में छाई बधाइयों को तो समझा जा सकता है, पर मज़दूरों-ग़रीबों के हित में समाज बदलने की बात करने वाले लोग और पार्टियाँ इस बात पर क्यों ख़ुशी मना रहे हैं? क्या उन्होंने ग़रीबी को जड़ से मिटाने की कोई खोज कर डाली है, क्या ग़रीबी-असमानता-बेरोज़गारी-भुखमरी पैदा करने वाले पूँजीवाद को ख़त्म करने का कोई मन्तर उन्होंने ढूँढ निकाला है? जी नहीं, **बात इसके ठीक उल्टी है।**

पूरी दुनिया में पूँजीवाद केवल हथियारों और पैसे की ताक़त के बल पर नहीं टिका हुआ है। लोगों में भ्रम पैदा करने और शोषण-उत्पीड़न-बदहाली से पैदा होने वाले लोगों के ग़ुस्से पर पानी के छींटे डालने के लिए उसके पास लोकलुभावन बातें करने वाली सरकारें, तथाकथित कल्याणकारी नीतियाँ आदि भी होती हैं। इनके साथ ही उसके पास ऐसे 'थिंक टैंक', यानी ऐसे विचारकों की जमात भी मौजूद होती है जो अन्दर से बुरी तरह बीमार और खोखली होती जा रही पूँजीवादी व्यवस्था के भविष्य को लेकर चिन्तित रहते हैं और उसकी उम्र लम्बी करने के नुस्ख़े सुझाते रहते हैं। वे जानते हैं कि आम लोगों की बढ़ती ग़रीबी और बदहाली व्यवस्था के लिए ख़तरनाक है। इसलिए वे ऐसी तरकीबें खोजने में लगे रहते हैं जो पूँजीवादी व्यवस्था के तीखे होते अन्तरविरोधों को धुँधला कर सकें और उसके विरुद्ध होने वाले विस्फोटों को कुछ और समय तक टाल सकें।

भूमण्डलीकरण और उदारीकरण की घनघोर मज़दूर-विरोधी और दुनियाभर में ग़रीबी को बढ़ाने वाली नीतियों के लागू होने के दौर में कभी मोहम्मद यूनुस, कभी अमर्त्य सेन, तो कभी अभिजीत बनर्जी और उनके साथियों को नोबल पुरस्कार से नवाज़े जाने के पीछे की सच्चाई यही है। **संघी दोगले अभिजीत बनर्जी को जो गालियाँ दे रहे हैं उसके कारण अलग हैं मगर हमें ग़रीबी दूर करने के नाम पर चलने वाले इस खेल को आम मेहनतकशों के नज़रिये से समझने की ज़रूरत है।**

इस बार अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार माइकेल क्रेमर, अभिजीत बनर्जी और एस्थर दुफ़्लो की तिकड़ी को मिला है जिन्होंने यह सिद्धान्त पेश किया है कि प्रायोगिक तरीकों का प्रभावी ढंग से उपयोग करके सरकारी नीतियों में बदलाव लाया जा सकता है और इसके ज़रिए ग़रीबी को कम किया जा सकता है। उनका सिद्धान्त यह मौलिक खोज करता है कि ग़रीबी कई तरह के कारकों का नतीजा होता है और नियंत्रित प्रयोगों के ज़रिए उस सबसे बड़े कारण की पहचान करने की ज़रूरत होती है जिस पर सरकारी नीति से चोट की जाये। यानी समस्या ग़रीबी के सबसे बड़े कारण की पहचान करना है। विभिन्न वजहों से यह कारण छिपा रहता है और प्रयोगों के ज़रिए ही उसे सामने लाया जा सकता है। अभिजीत बैनर्जी ने अमेरिका के मैसाच्युसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी (एमआईटी) में 'अब्दुल जमील लतीफ़ ग़रीबी प्रयोगशाला' में काम करते हुये ग़रीबों पर ऐसे प्रयोग करने की योजनाएँ बनायीं। इन्हें रैंडमाइज़्ड कंट्रोल्ड ट्रायल (आरसीटी) कहा जाता है। यानी ग़रीबों पर चूहों की तरह प्रयोग करके यह पता लगाते रहो कि कुछ सरकारी टुकड़े फेंककर ग़रीबी थोड़ी कम करने का कौन-सा नुस्ख़ा काम करेगा। बस लोगों को यह मत पता लगने दो कि ग़रीबी का असली कारण यह पूँजीवादी व्यवस्था है जो करोड़ों-करोड़ मेहनतकशों को लूटकर सारी सम्पत्ति मुट्ठीभर लुटेरों के हाथों में इकट्ठा करती जाती है। जिसमें ग़रीबी-बदहाली के महासागर फैलते रहते हैं और उनके बीच अमीरी के कुछ टापू, ऐश्वर्य की कुछ मीनारें खड़ी होती रहती हैं।

ख़ासकर जब पूँजीवादी व्यवस्था आज गहरे संकट में है, तब ऐसे ''कल्याणकारी अर्थशास्त्रियों'' की उसे ज़्यादा ज़रूरत है। असली मामला यह है कि पूँजी और श्रम के मूल अन्तरविरोध से ध्यान हटाकर कल्याणकारी नीतियाँ बनाने की पैबन्दसाज़ी की ओर कैसे ले जाया जाये। भाकपा-माकपा जैसे तमाम संशोधनवादी, बुर्जुआ लिबरल आदि अभिजीत बनर्जी को नोबल मिलने पर ख़ुशी से जो लहालोट हुए जा रहे हैं, उसका राज़ यही है। इन सबकी नस्ल एक ही है, सबके जीने का मक़सद भी एक ही है—मेहनतकशों को सरकारी ख़ैरात के लॉलीपॉप से बहलाना और पूँजीवादी व्यवस्था के संकटों को विस्फोटक हो जाने से रोकना। अभिजीत बनर्जी जैसे विद्वानों की राय से बनी कांग्रेस की ''न्याय योजना'' भी ऐसी ही थी।

चाहे अमर्त्य सेन हों या अभिजीत बनर्जी, ये कभी निजीकरण-उदारीकरण की उन नीतियों के बारे में नहीं बोलते जिनके विनाशकारी परिणाम पूरी दुनिया में ज़ाहिर हो चुके हैं। अर्थशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होने के बावजूद इन्हें यह नंगी सच्चाई नज़र नहीं आती कि पूँजीवादी व्यवस्था के टिके रहने की शर्त है मज़दूरों का शोषण और इसका अनिवार्य नतीजा है समाज के एक सिरे पर बेहिसाब दौलत और दूसरे सिरे पर बेहिसाब ग़रीबी। वे ग़रीबी के बुनियादी कारणों पर कभी चोट नहीं करते, वे पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की लूट पर कभी सवाल नहीं उठाते। वे केवल ग़रीबी और उससे पैदा होने वाले असन्तोष की आँच कम करने के लिए ''कल्याणकारी'' योजनाओं की फुहार छोड़ने के के उपाय सुझाते रहते हैं।

कई वामपंथी भी अमर्त्य सेन के बड़े फ़ैन हो गये हैं, क्योंकि वे मोदी सरकार की नीतियों के आलोचक हैं। इनकी कई नीतियों के आलोचक तो राहुल गाँधी भी हैं! इससे क्या होता है? मनमोहन सिंह के समय से ही अमर्त्य सेन कह रहे हैं कि लोकतांत्रिक सरकार को जनता के लिए नीति एवं न्याय की रक्षा करनी चाहिए। ऐसा करके वास्तव में वह लुटेरों को सबकुछ खुल्लमखुल्ला न करके कुछ पर्देदारी बरतने की राय देते हैं। शासन के जिस चरित्र और व्यवहार की कलई देश की मेहनतकश जनता के सामने खुलती जा रही है, जो व्यवस्था लाइलाज बीमारी से ग्रस्त है, उसी में पैबन्द लगाकर न्याय की बात करने का और क्या अर्थ हो सकता है? जब श्री सेन बाल कुपोषण, प्राथमिक शिक्षा की कमी, चिकित्सा का अभाव एवं ग़रीबी को दूर करने के लिए सामाजिक न्याय की बात करते हैं, तो क्या वे भूल जाते हैं कि इस सबके लिए आम मेहनतकशों का शोषण और वही पूँजीवादी व्यवस्था ज़िम्मेदार है जिससे वह सामाजिक न्याय की गुहार लगा रहे हैं? जब अमर्त्य सेन कहते हैं कि क़ानून बनाने वाले लोगों यानी नेताओं और मंत्रियों को जनता के हितों के प्रति जागरूक होना चाहिए तो वस्तुत: वे पूँजीवाद के ऊपर मँडरा रहे ख़तरे से आगाह करते हैं। उदारीकरण-निजीकरण की विनाशकारी नीतियों को दुनियाभर में लागू कराते समय विश्व बैंक जैसी संस्थाएँ जब ''मानवीय चेहरे वाले भूमण्डलीकरण'' की बात कर रही थीं, तो उसका भी यही मतलब था। विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष में बैठे अर्थशास्त्री जानते थे कि इन नीतियों के राक्षसी चेहरे पर मानवीय मुखौटा लगाना ज़रूरी है वरना इनके कारण होने वाली तबाही जनता के ग़ुस्से के भयंकर विस्फोट को जन्म देगी।

दरअसल अमर्त्य सेन या अभिजीत बनर्जी जैसे विद्वानों की चिन्ता का विषय वास्तविक सामाजिक न्याय नहीं वरन उस व्यवस्था की रक्षा करना है जिसके वे सिद्धान्तकार हैं। श्री सेन और श्री बनर्जी से यह पूछा जाना चाहिए कि अन्याय और अभाव की इन परिस्थितियों का जिम्मेदार कौन है? यह किसकी देन है? इस सामाजिक अन्याय, आर्थिक असमानता और ग़रीबी-अशिक्षा आदि के पीछे मूल कारण क्या हैं? आख़िर वे किससे ''न्याय'' की उम्मीद कर रहे हैं? उनकी चिन्ता का एक विषय यह है कि ''कमज़ोर वर्ग अपने से अधिक शक्तिशाली वर्ग की दया पर निर्भर रहने पर विवश है''। लेकिन इस असमानता की उत्पत्ति, कमज़ोर और शक्तिशाली वर्गों के अस्तित्व के मूल कारणों पर वे मौन क्यों हैं?

कोई पूछ सकता है कि पूँजीवादी नीति निर्देशक और थिंक टैंक भी तो यह समझते होंगे कि इस व्यवस्था में सुधार की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी है, फिर वे इसे बचाने के लिए इतने चिन्तित क्यों हैं? क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि बढ़ते शोषण से पैदा हो रहे मेहनतकशों के असन्तोष का ज्वालामुखी फटेगा तो उसका लावा उनके ऐश्वर्यद्वीपों को गलाकर रख देगा। इसलिए वे किसी न किसी तरह पूँजीवादी शोषण को कम तीखा करने और उसके नतीजों को सहन करने के लिए जनता को कुछ विटामिन की गोलियाँ खिलाने की सलाहें दिया करते हैं। यह अलग बात है कि अपने संकटों से चरमराते पूँजीवाद के लिए इन सलाहों को मानकर लागू करना भी दिन-ब-दिन कठिन होता जा रहा है।

मन्दी पर लेख में रह गयी अस्पष्टता पर टिप्पणी

'मज़दूर बिगुल' के जुलाई अंक में आर्थिक मन्दी पर आये मेरे लेख में पूँजीपति द्वारा बढ़ी हुई उत्पादकता के चलते अधिक बेशी मूल्य लूटने के प्रश्न पर अस्पष्टता मौजूद थी। इस लेख की ही निरन्तरता में सितम्बर अंक में भी एक लेख आया था। जुलाई अंक में 'गम्भीर आर्थिक संकट में धँसती भारतीय अर्थव्यवस्था' लेख में पूँजीपति द्वारा मज़दूर से सापेक्षिक बेशी मूल्य लूटने की प्रक्रिया को समझाते हुए यह लिखा गया था कि ''मुनाफ़ा निचोड़ने के लिए उन्नत मशीनरी लगायी जाती है जिससे मज़दूर की उत्पादकता बढ़ जाती है। यानी पहले जितना काम करने में एक मज़दूर को 12 घण्टा लगता था अब उसे मज़दूर 2 घण्टे में ही कर लेता है। इस प्रकार उत्पादन की प्रक्रिया में अब एक मज़दूर पहले से ज़्यादा माल पैदा करता है। मशीनीकरण के कारण प्रति इकाई माल का मूल्य कम हो जाता है। परन्तु बाज़ार में इस माल की क़ीमत ज़्यादा होती है। यह पूँजीपति अपने माल को उन्नत मशीनरी के कारण उनके असल मूल्य से ज़्यादा में बेचता है मगर मज़दूर का वेतन नहीं बढ़ाता है। यहाँ वह पूँजीपति मज़दूर का अधिक शोषण करता है। परन्तु यह एक अस्थाई परिघटना है। एक पूँजीपति द्वारा मशीनीकरण अन्य मालिकों को भी मशीनीकरण करने पर मजबूर करता है। और यह प्रक्रिया लगातार सभी सेक्टरों में दोहरायी जाती है। इससे मज़दूर के बेशी मूल्य की लूट बन्द नहीं होती है बल्कि मशीनीकरण की वजह से जीने के लिए आवश्यक माल सस्ता होने की वजह से मज़दूर के आवश्यक श्रम काल का मूल्य भी घट जाता है व पूँजीपति के लिए कम मज़दूरी पर मज़दूर को लूटना सम्भव हो जाता है।'' इस पंक्ति में यह बात आयी है कि ''मशीनीकरण की वजह से जीने के लिए आवश्यक माल सस्ता होने की वजह से मज़दूर के आवश्यक श्रम काल का मूल्य भी घट जाता है व पूँजीपति के लिए कम मज़दूरी पर मज़दूर को लूटना सम्भव हो जाता है''। मशीनीकरण के कारण किस प्रकार मज़दूर का आवश्यक श्रमकाल घटता है

इस प्रश्न पर कोई भी अस्पष्टता न रहे इसलिए इसे विस्तार से समझते हैं। हमने ऊपर बताया था कि उत्पादन के एक क्षेत्र में पूँजीपति माल सस्ता करने के लिए मशीनीकरण करता है। मशीनीकरण के कारण मज़दूर की उत्पादकता बढ़ जाती है और पूँजीपति अपने माल को सस्ते में बेच सकता है। परन्तु अन्य मालिक अपने माल को अभी भी पुराने दाम पर ही बेचते हैं। इस तरह वह पूँजीपति माल की कीमत को लागत से अधिक रखकर व अन्य पूँजीपतियों के माल से कम रखकर पहले से अधिक मुनाफ़ा कमा लेता है। परन्तु अन्य पूँजीपति भी कीमत कम करने के लिए मशीनीकरण करते हैं। और अन्त में यह प्रक्रिया समूचे क्षेत्र में दोहराई जाती है। अत: पूँजीपतियों के बीच होड़ उन्हें मजबूर करती है कि वे नित निरंतर मशीनीकरण करें। परन्तु जब यह मशीनीकरण जब पूरे क्षेत्र में एक स्तर पर आ जाये तो जिस पूँजीपति ने सबसे पहले मशीनीकरण किया था उसका अतिरिक्त मुनाफ़ा ग़ायब हो जाता है। परन्तु यह गलाकाटू प्रतिस्पर्धा पूँजीपतियों के बीच जारी रहती है।

परन्तु क्या इससे मज़दूरों के आवश्यक श्रम काल का मूल्य घट जाता है? मशीनीकरण का इस पर कैसे प्रभाव पड़ता है? आवश्यक श्रम काल वह श्रम काल होता है जिसमें मज़दूर अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के लिए ज़रूरी मालों के बराबर मूल्य पैदा करता है और कार्य दिवस में उसका बाकी समय बेशी श्रम काल होता है जिसमें वह बेशी मूल्य पैदा करता है जिसे पूँजीपति हड़प लेता है। अगर जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक मालों की कीमत घट जाये तभी किसी पूँजीपति के लिए यह सम्भव है कि वह मज़दूर के आवश्यक श्रम काल को कम कर सके। जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक मालों के उत्पादन के क्षेत्र में मशीनीकरण या बेहतर तरीकों के चलते इस क्षेत्र में लगे मज़दूर की उत्पादकता बढ़ती है जिस कारण ये माल सस्ते हो जाते हैं। जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक माल के उत्पादन के क्षेत्र में मशीनीकरण या उत्पादन के बेहतर तरीकों के चलते मज़दूरों का आवश्यक श्रम काल घट जाता है। इसके अलावा यह तब भी हो सकता है जब जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक माल के उत्पादन के साधनों की कीमत घट जाये। जैसे एक जूते की कीमत न सिर्फ जूता बनाने की श्रम उत्पादकता के ज़रिए घट सकती है बल्कि जूते में लगने वाले चमड़े या अन्य मालों की कीमत में कमी से भी घट सकती है। लेकिन जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक माल के क्षेत्र और इस क्षेत्र के उत्पादन के साधन बनाने वाले क्षेत्र के अलावा अन्य क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ने से श्रम शक्ति का मूल्य प्रभावित नहीं होता है बल्कि कीमत कम रखने की होड़ और अधिक बढ़ती है। इससे साफ़ है कि किस प्रकार पूँजीपति मज़दूर को लूटने के लिए व अपने माल की कीमत कम रखने के लिए मशीनीकरण करता है। परन्तु इस प्रक्रिया में बेशी मूल्य तभी बढ़ता है जब जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक माल के क्षेत्र और इस क्षेत्र के उत्पादन के साधन बनाने वाले क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ती है।

– सनी सिंह

गाँव की ग़रीब आबादी के बीच मनरेगा मज़दूर यूनियन की ज़रूरत और 'क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन' के अनुभव

– प्रवीन कुमार

पिछले लगभग 6-7 महीनों से हरियाणा के कलायत ब्लॉक के आसपास के गाँवों में रहने वाले मनरेगा मज़दूर संघर्ष कर रहे हैं। उनके संघर्ष की शुरुआत इस बात को लेकर हुई कि मनरेगा विभाग उनके गाँव में रहने वाले सभी मज़दूरों का मनरेगा कार्ड बनाये और मनरेगा के तहत मिलने वाला काम जितना जल्द हो सके शुरू करवाये। क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के बैनर तले ये मज़दूर अपने संघर्ष को जारी रखे हुए हैं। मनरेगा मज़दूर अपने इस संघर्ष के दौरान कलायत के तीन-चार गाँव में मनरेगा का काम शुरू करवाने में कामयाब भी हुए हैं। मनरेगा मज़दूरों को अपना यह संघर्ष जारी रखने में बहुत सारी दिक्क़तों का सामना करना पड़ रहा है। इन सभी दिक्क़तों का ज़िक्र हम आगे करेंगे।

मनरेगा मज़दूरों के साथ सत्ता में आने वाली सभी सरकारों का छल

हम सभी जानते हैं कि मनरेगा अधिनियम यूपीए सरकार के समय लागू किया गया था। इस दौरान सरकार ने यह माना था कि गाँव में रहने वाले अकुशल मज़दूरों (कोई भी मज़दूर अकुशल भी सरकार की कमी के कारण होता है) को सरकार इस क़ानून के तहत 100 दिन का रोज़गार मुहैया करवाएगी। सरकार का यह मानना था कि इस क़ानून को लागू करने से गाँव की ग़रीबी दूर की जा सकती है। इस मनरेगा अधिनियम को पहले 200 जिलों में और बाद में पूरे देश में लागू करने की बात की गयी। लेकिन यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि सत्ता में आने वाली किसी भी सरकार द्वारा इसको ज़मीनी स्तर पर कितना लागू किया गया है। अगर हम मनरेगा की किसी भी रिपोर्ट को उठाकर देखें तो उसमें औसतन 43, 48 या ज़्यादा से ज़्यादा 54 दिन ही किसी गाँव में काम चल पाया है। लेकिन अब तो इस विभाग का इतना बुरा हाल हो चुका है कि इसमें पूरे साल में काम का औसत केवल 34 दिन ही रह गया है। यह तथ्य अपने-आप में सरकार और मनरेगा विभाग की असल सच्चाई को उजागर कर देती है। एक तरफ़ आज भाजपा सरकार यह दावा कर रही है कि वह मनरेगा के काम को 100 दिन से बढ़ाकर 120 या 150 दिन कर देगी, लेकिन हक़ीक़त हमें यह बताती है कि 120 या 150 दिन तो दूर की बात वह अब तक 100 दिन के काम को भी पूरे देश में कहीं पर भी लागू नहीं कर पायी है। भाजपा की बेशर्मी तो इस बात में भी देखी जा सकती है जब वह एक ओर मनरेगा की मज़दूरी बढ़ाने की बात करती है, दूसरी मनरेगा मज़दूरी केवल 1 रुपये से लेकर 5 रुपये तक ही बढ़ाती है। यह मज़दूरों के साथ मज़ाक़ नहीं तो क्या है?

अगर थोड़ा और गहराई में जायें तो मनरेगा अधिनियम के तहत मज़दूरों को थोड़े-बहुत जितने भी अधिकार दिये गये हैं वह भी ज़मीनी स्तर पर कहीं भी लागू नहीं हो पाते। आज जहाँ कहीं भी मनरेगा मज़दूर काम कर रहे हैं वहाँ किसी भी प्रकार की सुविधा उनको नहीं मिल पाती। जैसे काम के दौरान मज़दूरों को साफ़ पीने का पानी, आराम करने के लिए छाया व बच्चों के लिए पालनाघर की व्यवस्था करना प्रशासन या सरकार की ज़िम्मेदारी होती है। लेकिन किसी सरकार या प्रशासन का मज़दूरों की तरफ़ ध्यान हो तभी ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध करवायी जा सकती हैं। क्या हमें लगता है कि आज़ादी के 70 साल के इतिहास में सत्ता में आने वाली किसी भी पार्टी (कांग्रेस हो या भाजपा) ने मज़दूरों के हित में कोई क़ानून बनाया है या अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए अगर कोई छोटा-मोटा बनाया भी है तो उसको ज़मीनी स्तर पर कहीं लागू किया हो? हाल की घटना का ज़िक्र करें तो कैथल के गाँव क्योड़क व दयोहरा में मनरेगा में काम के दौरान हुई बीमारी के कारण चार महिलाओं की मौत हो चुकी है और 45 से ज़्यादा मज़दूर बीमारी से जूझ रहे हैं। चार मज़दूरों की मौत के कारण बीमार मज़दूर भी डर के साये में जी रहे है कि अगला नम्बर पता नहीं किस मज़दूर का होगा।

मामला यह है कि इन लगभग 50 मनरेगा मज़दूरों से कुरुक्षेत्र जिले के गाँव गुमथला नहर की सफ़ाई करवाई जा रही थी। इसी दौरान ये बीमारी की चपेट में आ गये जिसका ख़ामियाज़ा इनको अपने चार साथियों की मौत से चुकाना पड़ा और अभी तक कुछ भी पक्का नहीं कहा जा सकता कि और कितने मनरेगा मज़दूर इसकी चपेट में आयेंगे। इन मज़दूरों की मौत का ज़िम्मेदार मनरेगा प्रशासन व सरकार के सिवा किसको कहा जा सकता है? अब तक सरकार के किसी भी नेता-मंत्री द्वारा किसी भी प्रकार का मुआवज़ा या किसी भी प्रशासनिक अधिकारों पर कार्रवाई की बात कहना तो दूर, अभी तक उन्हें मज़दूरों के परिवार के किसी सदस्य का हाल-चाल पूछना भी ज़रूरी नहीं लगा। इस चुनावी माहौल में जब सभी चुनावबाज़ पार्टियों व उनके नेता मंत्रियों का यह हाल है तो सत्ता में आने के बाद वह मज़दूरों पर कितना क़हर बरपा करेंगे इसका अन्दाज़ा हम लगा सकते हैं।

आज मनरेगा मज़दूरों को अपने आसपास काम न मिलने की वजह से किसी दूसरे ज़िले में जाकर काम करने पर मजबूर होना पड़ रहा है। यह तो अकेले कैथल जिले की घटना है। लेकिन अगर हम देश के अलग-अलग हिस्सों की बात करें तो सरकार व प्रशासन की लापरवाही के कारण कितने ही मज़दूर व उनके बच्चे हर दिन मौत के साये में जीने के साथ-साथ मौत की नींद सो रहे हैं। इन सबका ज़िक्र तो किसी भी प्रिण्ट मीडिया या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से ग़ायब होता है।

संघर्ष के दौरान सामने आयी दिक्क़तें

सबसे पहले जब यूनियन के सदस्यों ने कलायत के सिर्फ़ एक गाँव चौशाला में मनरेगा का काम शुरू करवाने के लिए क़दम आगे बढाया तो हमें बहुत परेशानियों का सामना करना। इस दौरान हमने 1 अप्रैल, को कलायक बीडीपीओ दफ़्तर पर प्रदर्शन किया और हमने बीडीपीओ को सभी समस्याओं से अवगत करवाया ताकि हम गाँव में मनरेगा का काम शुरू करवा सकें। लेकिन काफ़ी लम्बे समय तक मनरेगा के काम को लेकर कोई कार्रवाई नहीं की गई। अब हम समझ चुके थे कि ग्राम पंचायत समेत सभी प्रशासनिक अधिकारी इस काम को शुरू करवाने में इसलिए दिलचस्पी नहीं ले रहे थे ताकि वह मज़दूरों के अधिकार को हड़प कर अपना-अपना हिस्सा बाँट सकें। अब हमको पता चल चुका था कि हर गाँव में मनरेगा का काम काग़ज़ों में तो दिखा दिया जाता है लेकिन ज़मीनी सच्चाई कुछ ओर ही होती है।

इस संघर्ष के दौरान हमने यह भी महसूस किया कि अगर किसी भी गाँव में मनरेगा का काम शुरू करवाना है तो उसके लिए हमें सबसे पहले मज़दूरों के बीच से मेट (मेट मनरेगा मज़दूरों के ऊपर होता है और उसको मज़दूरों से उनको मिला हुआ काम करवाना होता है) का प्रस्ताव डालना पड़ेगा ताकि हम मनरेगा के काम को ग्राम पंचायत के हाथों सौंपने की बजाय अपने हाथ में ख़ुद ले सकें। अगर मज़दूरों का अपना मेट होगा तो मज़दूर भी उस पर आसानी से नज़र रख सकते हैं ताकि वह मज़दूरों से साथ किसी भी प्रकार का धोखा न कर सके। इसी दौरान हमें यह भी पता चला कि प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा मनरेगा का काम चलवाना तो दूर वह तो सुचारु रूप से मज़दूरों की काम की कॉपी यानी जॉब कार्ड भी नहीं बनाते जिसके तहत मज़दूरों को मनरेगा का काम मिलता है।

ऐसे में यूनियन ने अपने चार महीने के संघर्ष के बाद केवल मज़दूरों के बीच से मेट ही नहीं बनवाया बल्कि साथ में जॉब कार्ड बनवाने की प्रक्रिया भी शुरू करवायी। यूनियन यह पूरी प्रक्रिया कलायत ब्लाक के आस-पास के 7-8 गाँव में वहाँ मनरेगा मेटों की सहयता से लगातार पूरी करवा रही है। जॉब कार्ड बनवाने की प्रक्रिया में ही हमें प्रशासनिक अधिकारियों के स्टाफ की भी अच्छी ख़ासी कमी महसूस हुई। किसी भी विभाग में जब अधिकारी ही नहीं होंगे तो उस विभाग का काम सुचारु रूप से कैसे चल पायेगा। इसलिए किसी भी गाँव में मनरेगा का काम शुरू करवाने के साथ ही साथ हमें इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि मनरेगा विभाग में सभी अधिकारी सरकार द्वारा उपलब्ध करवाये जायें।

हमें आज यूनियन की ज़रूरत क्यों है

मज़दूरों के लिए यूनियन का होना कितना ज़रूरी है इसका अन्दाज़ा हम ऊपर की चर्चा से लगा सकते हैं। आज के हालात को देखते हुए केवल मनरेगा मज़दूरों को ही नहीं बल्कि हर क्षेत्र के मज़दूरों को अपनी यूनियन खड़ी करने की ज़रूरत है। वैसे तो 'मज़दूर बिगुल' में मज़दूरों की यूनियन के बारे में कई बार लेख लिखे गये हैं कि मज़दूरों को अपनी यूनियन में संगठित होने की क्यों ज़रूरत होती है, लेकिन एक बार फिर हम 'क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन' की ओर से मज़दूरों के बीच यूनियन की ज़रूरत पर प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे।

मज़दूरों के नेता लेनिन ने ट्रेड यूनियन को मज़दूरों की पहली पाठशाला कहा है। उनका मतलब यही था कि अगर कोई यूनियन मज़दूरों की असल लड़ाई को लड़ रही है तो वह मज़दूरों की आर्थिक माँगों को लेकर लड़ने के साथ-साथ उनमें बाहर से राजनीतिक चेतना डालने का हरसम्भव प्रयास करेगी ताकि वह पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग की लड़ाई को पहचान कर अपने संघर्ष को आगे बड़ा सकें। मज़दूरों की असल यूनियन वही होती है जो मज़दूरों में उनकी आर्थिक माँगों से राजनीतिक माँगों की तरफ़ बढ़ने की समझ और साहस पैदा करती है। हम सभी जानते हैं कि हमारे देश में जाति व धर्म की कितनी गहरी जड़ें हैं। मज़दूरों की असल लड़ाई लड़ने वाली यूनियन इन जाति-धर्म की दीवारों पर चोट करने के साथ-साथ मज़दूरों में वर्ग एकजुटता पैदा करने का काम करेगी ताकि हर जाति-धर्म से आने वाले मज़दूरों में सर्वहारा चेतना पैदा की जा सके।

मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में किये गये मज़दूर-विरोधी बदलावों के मायने

(पेज 5 से आगे)

तेज़ी से बढ़ी है। जुलाई 2019 में जब देश में बेरोज़गारी की दर 7.5 फ़ीसदी थी, वहीं राजस्थान में बेरोज़गारी की दर 10.6 फ़ीसदी थी। इसके अलावा नेट मूल्य संवर्धन में मज़दूरी के हिस्से में लगातार गिरावट देखने में आयी है। ये आँकड़े साफ़ दिखाते हैं कि राजस्थान के श्रम सुधारों से मज़दूरों की हालात बेहतर होने की बजाया ख़राब ही हुए हैं।

विश्व बैंक के 'व्यापार की सुगमता' की सूची में भारत 2014 में 142वें स्थान से 2019 में 77वें स्थान पर पहुँच चुका है। मोदी सरकार इस सूची के पहले 50 में भारत का नाम दर्ज कराने के लिए पूरी ताक़त लगा रही है। 'व्यापार की सुगमता' हासिल करने का एक ही मतलब है- मज़दूरों की लूट को और आसान बनाना। देश में आर्थिक मन्दी ने प्रमुख तौर पर ऑटोमोबाइल और गारमेण्ट सेक्टर में भयंकर रूप ले लिया है। इसके अलावा मन्दी ने हर क्षेत्र में असर दिखाना शुरू कर दिया है।

आर्थिक वृद्धि दर घटने से लेकर ग़ैर-निष्पादित सम्पत्ति (नॉन-परफॉर्मिंग एसेट) में बढ़ोत्तरी पूँजी के गहराते संकट का इशारा भर हैं। ऐसे में श्रम क़ानूनों को लचीला कर लेबर कोड में बदलना देश के पूँजीपतियों के मुनाफ़े को हर हाल में बरक़रार रखने की तैयारी है। मोदी सरकार के दूसरे कार्यकाल पर पूँजीपतियों द्वारा किये गए 'निवेश' का फल उन्हें मिलना शुरू हो चुका है।

श्रम क़ानूनों पर हमला इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। श्रम क़ानूनों पर इस हमले का जवाब सिर्फ़ एक या दो दिवसीय राष्ट्रव्यापी हड़ताल से नहीं दिया जा सकता। आने वाले समय में वर्ग-संघर्ष और तीखे होने वाले हैं। मज़दूरों को व्यवस्था जनित इस शोषण के खात्मे के लिए अपनी लड़ाई मजबूत करनी होगी। मज़दूर-विरोधी फ़ासीवादी भाजपा सरकार को हराने का असली रास्ता जनान्दोलनों और राष्ट्रव्यापी हड़तालों के रूप में देश की सड़कों पर होगा।

क्या आतंकवाद देश की सबसे बड़ी समस्या है?

(पेज 10 से आगे)

में आकर विकास करेगी लेकिन सत्ता में आने के बाद सारे वादे भूलभाल जाती है और पूँजीपतियों के कल्याण के लिए उल्टा विनाश करने लगती है।

क्या यह कोई आतंकवाद करता है जो देश की 18 करोड़ आबादी को फुटपाथों पर सोना पड़ता है और करीब इतनी ही आबादी को ही झुग्गी-झोंपड़ियों में रहना पड़ता है?

अब आइए दुनिया के स्तर पर बात करें। विश्वशांति के लिए सबसे अधिक चिंतित कौन सा देश दिखाई पड़ता है? कौन सा देश आतंकवाद से लड़ने के लिए पूरी तरह तत्पर है? शायद आप अमेरिका का नाम लें। आइए आतंकवाद को बढ़ावा देने में अमेरिका की ख़ुद की भूमिका से सम्बन्धित कुछ आँकड़े देखें।

अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा हथियारों का उत्पादक है। यह 98 से भी अधिक देशों को हथियार बेचता है। यह अपने देश की जीडीपी का लगभग 3.2 प्रतिशत रक्षा-व्यवस्था पर खर्च करता है। बीसवीं और इक्कीसवीं सदी में सबसे अधिक युद्ध छेड़ने और दूसरे देशों पर हमले करने में इस देश को विश्व में पहला स्थान प्राप्त है। केवल 21वीं सदी की सूची यह रही : अफगानिस्तान पर हमला (2001), उत्तर-पश्चिम पाकिस्तान में युद्ध (2004), सोमालिया के गृहयुद्ध में हस्तक्षेप (2007), इराक पर हमला (2003), सीरिया में सैन्य हस्तक्षेप (2014), यमन के गृहयुद्ध में हस्तक्षेप (2015), लीबिया में सैन्य हस्तक्षेप (2015)।

इसके अतिरिक्त ड्रोन जैसे मानवरहित विमानों से हमले करके पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान और यमन जैसे देशों में हज़ारों नागरिकों को मारने का काम तो अमेरिका 2009 से ही करता आ रहा है। यह सारा ही काम आतंकवाद के सफ़ाये के लिए हुआ है या फिर लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के नाम पर।

लेकिन क्या पूरे के पूरे देशों को तबाह कर डालना, लाखों बच्चों को मौत के घाट उतार देना, लोगों में आतंक फैलाना आतंकवाद नहीं है?

विकराल बेरोज़गारी : ज़िम्मेदार कौन? बढ़ती आबादी या पूँजीवादी व्यवस्था?

(पेज 1 से आगे)

बढ़ती आबादी?

पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का लक्ष्य निजी पूँजीपतियों के लिए अधिकतम सम्भव मुनाफ़ा कमाना होता है। यहाँ उत्पादन का लक्ष्य समाज में रह रहे लोगों की ज़रूरतों को पूरा करना हरगिज़ नहीं होता है। पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग के बीच आपस में गलाकाटू प्रतियोगिता होती है। और इस प्रतियोगिता का मैदान होता है पूँजीवादी बाज़ार, जहाँ पूँजीपति बाज़ार में टिके रहने के लिए प्रति इकाई अपने माल की क़ीमत दूसरे पूँजीपति के मुक़ाबले कम रखने की कोशिश करता है। प्रति इकाई अपने माल की क़ीमत कम रखने के लिए प्रति इकाई उत्पादन की लागत भी कम से कम रखने की ज़रूरत होती है। पूँजीपति उत्पादन के लिए एक तरफ़ मशीनों, कच्चे मालों, ईंधन आदि में निवेश करता है दूसरी तरफ़ मज़दूरों को काम पर रखता है और अपनी पूँजी का एक हिस्सा मज़दूरी में निवेश करता है। मशीनों, कच्चे माल, ईंधन, सहायक माल आदि पर निवेश की गयी पूँजी के हिस्से को स्थिर पूँजी कहते हैं, जबकि मज़दूरी पर निवेश की गयी पूँजी को परिवर्तनशील पूँजी कहते हैं। स्थिर पूँजी अपने मूल्य को पक्के उत्पाद (अंतिम उत्पाद जिसे वह पूँजीपति बाज़ार में बेचता है) में बिना बढ़े ज्यों का त्यों हस्तान्तरित कर देती है जबकि परिवर्तनशील पूँजी अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य अन्तिम उत्पाद में हस्तान्तरित करती है। यही अतिरिक्त मूल्य पूँजीपतियों के मुनाफ़े का स्रोत होता है। स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी के इस अनुपात को हम पूँजी का आवयविक संघटन कहते हैं। मशीनों, कच्चे माल आदि (यानी उत्पादन के साधन) की मात्रा का मज़दूरों की संख्या के अनुपात को पूँजी का तकनीकी संघटन कहते हैं।

प्रति इकाई अपने माल की क़ीमत कम रखने के लिए एक तरफ़ तो पूँजीपति आधुनिक से आधुनिक मशीनें लगाता है, जो कम समय में अधिक से अधिक कच्चे माल को कम से कम मज़दूरों की सहायता से पक्के माल में परिवर्तित कर देती हैं। यानी उत्पादन का स्तर विस्तारित होता है और बड़े पैमाने पर होता है। कुल मिलाकर कहा जाये तो मज़दूरों की उत्पादकता बढ़ जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि जो काम पहले अधिक मज़दूर मिल कर करते थे वही काम करने के लिए अब कम मज़दूरों की आवश्यकता होती है। मतलब अब पूँजीपति परिवर्तनशील पूँजी में निवेश को स्थिर पूँजी पर निवेश के मुक़ाबले कम कर देता है। यानी पूँजी के आवयविक संघटन में वृद्धि होती है। पूँजी के आवयविक संघटन में वृद्धि के साथ-साथ प्रति मशीन, कच्चे माल आदि (उत्पादन के साधनों) पर मज़दूरों की ज़रूरत कम हो जाती है यानी पूँजी के तकनीकी संघटन में भी परिवर्तन होता है। इस तरह हम देख सकते हैं कि पूँजीवादी प्रतियोगिता की वजह से उत्पादन का स्तर ऊँचा होता जाता है। उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है, नयी-नयी आधुनिक मशीनों की मदद से उत्पादन की गति तेज़ हो जाती है, मज़दूरों की उत्पादकता में बेइन्तहा वृद्धि हो जाती है, समाज में वस्तुओं की उपलब्धता पहले के मुक़ाबले बहुत ज़्यादा होती है लेकिन अब उत्पादन के लिए पहले से कम मज़दूरों की ज़रूरत होती है। यानी अब सापेक्षिक तौर पर अतिरिक्त मज़दूर आबादी पैदा होती है जो बेरोज़गारों और अर्द्ध-बेरोज़गारों की फ़ौज में शामिल हो जाती है। दरअसल पूँजीवादी समाज में दिख रही अतिरिक्त आबादी की वजह यही है। ज़्यादा मुनाफ़े और गलाकाटू प्रतियोगिता पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था की अराजक गति की वजह से बेरोज़गारी पैदा होती है, सापेक्षिक तौर पर अतिरिक्त आबादी दिखाई देती है। और इस बेरोज़गारी की वजह से मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच की प्रतियोगिता में पूँजीपति का हाथ ऊँचा रहता है और वह रोज़गारशुदा मज़दूरों को अपनी मनमानी दर से मज़दूरी देता है क्योंकि बाहर बेरोज़गारों की फ़ौज खड़ी रहती है! इसलिए समाज में सापेक्षिक तौर पर ग़रीबी बढ़ती जाती है।

बड़े पैमाने के उत्पादन और मशीनीकरण में तेज़ी से वृद्धि की वजह से छोटे पूँजीपति वर्ग का एक हिस्सा भी बाज़ार में पूँजीवादी प्रतियोगिता में पिछड़ जाता है और बर्बादी के कगार पर पहुँच जाता है। उसके एक हिस्से का भी सर्वहाराकरण होता है और मज़दूरों की फ़ौज में वह भी शामिल हो जाता है। सापेक्षिक रूप से अतिरिक्त आबादी की वृद्धि में इनका भी योगदान होता है। दूसरी तरफ़ अत्याधुनिक और स्वचालित मशीनों के इस्तेमाल से उत्पादन की कार्रवाई बेहद आसान हो जाती है, अब इन्सानों की कुशलता की ज़रूरत पहले से कम रह जाती है, और इसी प्रक्रिया में कुशल और प्रशिक्षित सफ़ेद कॉलर मज़दूरों और मध्यम वर्ग का एक हिस्सा भी बेरोज़गारों की फ़ौज में शामिल हो जाता है। आज के समय में ऑटोमोबाइल और आई. टी. सेक्टर में बढ़ रही बेरोज़गारी इस बात की सबसे बेहतरीन मिसाल है।

ऊपर पेश किये गये विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि बेरोज़गारी और ग़रीबी की वजह कहीं से भी बढ़ती आबादी नहीं है, जैसाकि हमारे माननीय प्रधानमंत्री हमें चेतावनीभरा ज्ञान देते हैं, बल्कि ज़्यादा और गलाकाटू प्रतियोगिता पर टिकी पूँजी की अराजक गति है। जोकि एक तरह उत्पादन के स्तर को बेइन्तहा रूप से बढ़ाती है, समाज में सम्पत्ति की वृद्धि होती है, उत्पादन के नये-नये क्षेत्रों का विस्तार होता है, इन्सान के जीवन को आसान बनाने के साधनों का विस्तार होता है। लेकिन इसके बावजूद बेरोज़गारी बढ़ती जाती है। यानी पूँजीवादी समाज में बेरोज़गारी और ग़रीबी संसाधनों और संपत्ति की कमी की वजह से नहीं बल्कि इसकी अधिकता की वजह से होती है। आइए, अब हम आँकड़ों से भारत में हुई आबादी की वृद्धि और संसाधनों की वृद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं।

आबादी की वृद्धि और संसाधनों और उत्पादन की वृद्धि का तुलनात्मक वर्णन

सबसे पहले हम पिछले 4 दशक के दौरान हुई भारत की आबादी की वृद्धि दर की चर्चा करेंगे। निरपेक्ष रूप से भारत की आबादी 1971 के दशक से निरपेक्ष रूप से घटनी शुरू हो जायेगी। इन आँकड़ों से हम साफ़ तौर पर देख सकते हैं कि फ़ासीवादी मोदी की हर गप्प की तरह जनसंख्या विस्फोट की उसकी यह बात भी एक कोरी गप्प भर है जिसका मक़सद अपने आक़ाओं यानी अम्बानी-अडानी द्वारा लूट की वजह से पैदा होने वाली बेइन्तहा बेरोज़गारी के लिए जनता को ही ज़िम्मेदार ठहराना है।

आइए अब हम समाज में हुई सम्पत्ति की वृद्धि का अध्ययन करते हैं और आबादी की वृद्धि से इसकी तुलना करते हैं।

तालिका-2 से हम साफ़-साफ़ देख सकते हैं कि 1951 से 2017 के बीच आबादी की वृद्धि दर से कहीं अधिक अनाज, बिजली, कोयला, कच्चा तेल आदि के उत्पादन में वृद्धि हुई है।

अब हम अर्थव्यवस्था के दूसरे मानकों की वृद्धि दर पर एक नज़र डालते हैं और उसकी तुलना जनसंख्या की वृद्धि दर से करके देखते हैं।

तालिका-3 से हम साफ़-साफ़ देख सकते हैं कि सकल मूल्यवर्धन, प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय आय और सकल घरेलू पूँजी निर्माण की गति आबादी की वृद्धि की गति से कई गुना अधिक है। मतलब साफ़ है कि बढ़ती बेरोज़गारी और ग़रीबी का कारण आबादी नहीं बल्कि पूँजी संचय की प्रक्रिया है जिसकी वजह से चन्द पूँजीपतियों के हाथों में सारी सामाजिक सम्पत्ति सिमट जाती है।

अब हम सम्पत्ति के मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथों केन्द्रीकृत हो जाने के आँकड़े पर कुछ चर्चा करते हैं। ऑक्सफ़ैम की एक रिपोर्ट के अनुसार ऊपर की 1 फ़ीसदी आबादी के पास कुल 58 फ़ीसदी सम्पत्ति पर क़ब्ज़ा है। देश के लगभग 100 पूँजीवादी घरानों के पास लगभग 25 फ़ीसदी सम्पति पर क़ब्ज़ा है। 1980 के दशक से लेकर अब तक मुनाफ़े और मज़दूरी के अनुपात में 10 गुने से ज़्यादा की वृद्धि हुई है।

अब अन्त में, हम यही कह सकते हैं कि बढ़ती बेरोज़गारी की वजह पूँजीवादी व्यवस्था है जहाँ उत्पादन सामाजिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नहीं बल्कि मुट्ठीभर लुटेरों के मुनाफ़े के लिए होता है। इसलिए यहाँ मशीनीकरण और आधुनिक उत्पादन के साधनों के विकास ही आम जनता के दुःख और तकलीफ का कारण बन जाते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़कर सामाजिक ज़रूरत के लिए उत्पादन करने वाली व्यवस्था के निर्माण से ही यही मशीनीकरण और आधुनिक उत्पादन के साधन बेरोज़गारी, ग़रीबी समेत अधिक कार्य दिवस की समस्या का समाधान किया जा सकता है।

किसी ने ठीक ही कहा था कि बीमारी की सही डॉयगनोसीस (यानी पहचान) करने से ही हम उसका सही उपचार कर सकते हैं। यह पहला और उचित कदम उठाये बिना उपचार करना, अन्धे के हाथ में छुरी पकड़ाने के बराबर है – मरीज़ की गर्दन भी कट सकती है। अब यह हम सब पर है कि हम अपनी सारी ऊर्जा, उद्यम इस बात पर लगायें कि हमारे सबसे अनमोल संसाधन – मानव, उसकी जिन्दगी कैसे और ख़ुशहाल बनायें, उनकी बुनियादी ज़रूरतें मूल अधिकार कैसे उपलब्ध करायें, ताकि हर बच्चा, बूढ़ा और युवा, नर-नारी, सभी अपनी सृजनशक्ति का भरपूर इस्तेमाल कर सकें और तमाम सम्भावनाएँ चारों तरफ विकसित हो पायें। या फिर एक विक्षिप्त शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सर छुपाये इन सम्भावनाओं की निर्मम हत्या करने की योजना बनायें? फ़ैसला आप पर है।

तालिका 1

वर्ष	आबादी	दशकीय वृद्धि दर (%)	वृद्धि दर में परिवर्तन(%)
1971	548,159,65	24.80	3.16
1981	683,329,097	24.66	-0.14
1991	846,421,039	23.87	-0.79
2001	1,028,737,436	21.54	-2.33
2011	1,210,854,977	17.70	-3.84

तालिका 2

पैदावार	1950 -51	1960-61	1990 -91	2000-01	2010-11	2016-17
अनाज (दस लाख टन)	50.8	82.0	176.4	196.8	244.5	275
कोयला (दस लाख टन)	32.3	55.2	225.5	332.6	570.4	704.4
कच्चातेल (दस लाख टन)	0.3	0.5	33.0	32.4	37.7	38.1
बिजली उत्पादन (अरब किलोवाट घण्टे में)	5.0	17.0	264.0	500.0	844.8	1236.4
आबादी (दस लाख)	361	439.2	846.4	1028.7	1186.0	1299.0

तालिका-3

वर्ष	1950-51	1960-61	1990-91	2000-2001	2010-2011	2016-2017
सकल मूल्यवर्धित (GVA) (स्थिर मूल्य पर करोड़ रुपये में)	279618	410279	1347889	2348481	4918533	11247629
प्रतिव्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय आय (स्थिर मूल्य पर रुपये में)	7513	9482	15996	22491	39270	82229
सकल घरेलू पूँजी निर्माण (जीडीपी का प्रतिशत)	9.3	14.3	26.0	24.3	36.5	-

मेहनतकश साथियो, सरकार और संघ परिवार के झूठों और झूठे मुद्दों से सावधान रहो!

(पेज 1 से आगे)

कर भी बैंकों की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ा है। रिज़र्व बैंक के पास गाढ़े वक़्त के लिए सुरक्षित रखे गये फ़ण्ड पर भी यह सरकार बेशर्मी से डकैती डाल चुकी है। एक बार 1.76 लाख करोड़ रुपये और एक बार 30,000 करोड़ रुपये रिज़र्व फ़ण्ड में से भी झटके जा चुके हैं। अगर सबकुछ चंगा है, तो सरकार इस फ़ण्ड पर क्यों हाथ साफ़ कर रही है, जिसकी ज़रूरत 1947 से आज तक कभी नहीं पड़ी थी।

सरकारी उपक्रमों को खोखला करके ताबड़तोड़ बेचने की तैयारी चल रही है। बीएसएनएल और एमटीएनएल के डेढ़ लाख से अधिक कर्मचारियों को बाहर करने का सुझाव वित्त मंत्रालय ने दे ही दिया है। अम्बानी की जिओ कम्पनी उस पर दाँत गड़ाये बैठी है। मौक़ा पाते ही सरकार उसकी लाखों करोड़ की परिसम्पत्तियों को अपने आक़ा, अम्बानी को कौड़ियों के मोल बेच डालेगी। भारत गैस को बेचने की तैयारी कर ली गयी है। ओएनजीसी और एचएएल जैसे विशालकाय और लगातार मुनाफ़े में चलने वाले सरकारी उपक्रमों को अन्दर से इतना खोखला कर दिया गया है कि एचएएल को वेतन देने के लिए कर्ज़ लेना पड़ रहा है और ओएनजीसी हज़ारों करोड़ के कर्ज़ तले दब गया है। अब देर-सबेर इनकी बिक्री भी नम्बर आ जायेगा।

रेलवे को सरकार निजीकरण की पटरी पर बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से दौड़ा चुकी है। रेल की पटरियों, स्टेशनों, स्टाफ़ का भरपूर इस्तेमाल करके मुनाफ़ा पीटने के लिए पहली निजी ट्रेन 'तेजस' को दौड़ा दिया गया है। अब 150 ट्रेनों और 50 स्टेशनों को भी निजी हाथों में सौंप देने की तैयारी पूरी हो चुकी है।

बेरोज़गारी विकराल रूप धारण कर चुकी है। झूठ बोलने की भाजपाई मशीन महाराष्ट्र चुनाव में फिर एक करोड़ रोज़गार देने के वादे कर रही है, लेकिन एक भी नया रोज़गार कहीं पैदा नहीं हो रहा है। लोगों की नौकरियाँ छिनने का सिलसिला जारी है। उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने एक झटके में 25,000 होमगार्डों को बर्खास्त कर दिया। केन्द्रीय वित्त मंत्रालय ने साफ़ कह दिया कि बीएसएनएल और एमटीएनएल पर लदे कर्ज़ को चुकाने से अच्छा है कि इसके सारे कर्मचारियों को निकाल दिया जाये। उधर तेलंगाना में भाजपा के सहयोगी मुख्यमंत्री चन्द्रशेखर राव ने बरसों से तनख्वाह में मामूली बढ़ोत्तरी का विरोध कर रहे रोडवेज़ के 40,000 कर्मचारियों को एक साथ बाहर का रास्ता दिखा दिया।

ये कोई अपवाद नहीं, मोदी के 'न्यू इण्डिया' में यही होने वाला है। और अगर लोग विरोध करेंगे, तो उन्हें देशद्रोही, विकास का दुश्मन आदि कहकर दमन का शिकार बनाया जायेगा। उनके पक्ष में कहीं से कोई आवाज़ न उठ सके, इसलिए पूरे देश में आतंक का माहौल पैदा किया जा रहा है। सरकार के विरोध में बोलने वाले बुद्धिजीवियों और सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं को पूरी अँधेरगर्दी के साथ, जेलों में क़ैद रखा जा रहा है। सारे नियम-क़ानूनों को ठेंगा दिखाकर ज़मानत से इंकार किया जा रहा है। यहाँ तक कि बड़े विपक्षी नेताओं को भी किसी-न-किसी बहाने जेल भेजकर पहले से ही घुटने टेक चुके विपक्ष को और भी दयनीय बना दिया गया है।

संघ का एजेण्डा बिल्कुल साफ़ है। हिन्दुत्व और राष्ट्रवाद की तमाम बातों के बावजूद असलियत यह है कि संघ

इस देश में देशी-विदेशी बड़ी पूँजी का बेरोकटोक राज चाहता है। और इसी के लिए लोगों को बाँटने-लड़ाने के लिए उसे हिन्दू राष्ट्र का अपना एजेण्डा देश पर थोपना है। यही संघियों के परम गुरू हिटलर का एजेण्डा था और यही इनका भी लक्ष्य है। मोदी सरकार के साढ़े पाँच वर्ष के शासन में यह बिल्कुल साफ़ हो चुका है। यह दौर जनता के बुनियादी अधिकारों की कीमत पर देश के शोषक वर्गों के हितों को सुरक्षित करने और उन्हें तमाम तरह से फ़ायदे पहुँचाने के इन्तज़ाम करने में ही बीता है।

विश्वव्यापी मंदी और आर्थिक संकट की जिस नयी प्रचण्ड लहर की चेतावनी दुनिया भर के अर्थशास्त्र दे रहे हैं, वह भारतीय अर्थतंत्र को और भी भीषण संकट के भँवर में फँसाने वाली है। मँहगाई और बेरोज़गारी तब विकराल हो जायेगी। जैसा कि हम 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंकों में लगातार लिखते रहे हैं, लगातार गहराती मन्दी के कारण विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के सारे सरगना ख़ुद ही परेशान हैं। अति-उत्पादन के संकट के कारण दुनियाभर में उत्पादक गतिविधियाँ पहले ही धीमी पड़ रही हैं और तमाम उपायों के बावजूद बाज़ार में माँग उठ ही नहीं रही है, तो मोदी चाहे जितने देशों का चक्कर लगा लें, वहाँ से कोई मदद मिलने वाली नहीं है। उल्टे तात्कालिक फ़ायदों के लिए मोदी सरकार अमेरिका और चीन को ऐसी रियायतें दे रही है जिनसे देश के छोटे-मँझोले उद्योगों और कृषि की हालत और पतली हो जायेगी।

मोदी सरकार की नीतियों ने उस ज्वालामुखी के दहाने की ओर भारतीय समाज के सरकते जाने की रफ़्तार को काफ़ी तेज़ कर दिया है, जिस ओर घिसटने की यात्रा पिछले लगभग तीन दशकों से जारी है। भारतीय पूँजीवाद का आर्थिक संकट ढाँचागत है। यह पूरे सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर रहा है। बुर्जुआ जनवाद का राजनीतिक-संवैधानिक ढाँचा इसके दबाव से चरमरा रहा है।

फासीवाद संकटग्रस्त पूँजीवाद का अन्तिम उपाय होता है। क्योंकि फ़ासिस्ट सत्ताएँ हर तरह के विरोध को किनारे लगाकर, बुर्जुआ लोकतंत्र के तमाम मुखौटों को उतार फेंककर पूरी बेशर्मी के साथ पूँजीपतियों को जनता को खुलकर लूटने का मौक़ा देती हैं। वे देश के प्राकृतिक संसाधनों को देशी-विदेशी पूँजीपतियों की बर्बर लूट के लिए उनके हवाले कर देती हैं। मज़दूरों के सारे अधिकारों को छीनकर वे उन्हें निहत्था कर देती हैं और झूठे भावनात्मक मुद्दे उभाड़कर लोगों को आपस में बाँटकर उनकी एकजुटता तोड़ देती हैं। ऐसे में मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से परेशान पूँजीपतियों को संकट से राहत मिल जाती है। अर्थव्यवस्था की इतनी बुरी हालत के बावजूद तमाम पूँजीपति मोदी और आरएसएस के आगे जो नतमस्तक हो रहे हैं, इसका राज़ यही है। पिछले दिनों एच.सी.एल के शिव नादर, नागपुर में संघ द्वारा आयोजित विजयादशमी के मुख्य अतिथि बने। उसके एक दिन पहले विप्रो कंपनी के मालिक अज़ीम प्रेमजी ने संघ संस्थापक हेडगेवार के स्मारक और गोलवलकर की समाधि पर जाकर मत्था टेका। मोदी सरकार की आलोचना करते रहने वाले बजाज ग्रूप के राहुल बजाज भी सितम्बर में हेडगेवार के स्मारक पर मत्था टेक आये थे। टाटा ग्रुप के रतन टाटा तो पिछले कुछ महीनों में दो बार संघ के मुख्यालय में हाज़िरी बजा चुके हैं। आई.टी., फाइनेंस, ऑटोमोबाइल, स्टील इत्यादि सभी क्षेत्रों में की कम्पनियाँ मन्दी से परेशान हैं। सबको अपने मुनाफ़े को बचाने के लिए मोदी सरकार से अपने मनमाफ़िक नीतियाँ बनवानी हैं।

●

फ़ासीवाद की काली आँधी अपने असली रंग में आती जा रही है। मगर यह हताश होने या घरों में दुबक जाने का समय नहीं है। ज़रूरत एक लम्बे संघर्ष की तैयारी के लिए सड़कों पर उतरने की है। ज़रूरत आम मेहनतकश अवाम को जागृत, शिक्षित, एकजुट और संगठित करने की अनवरत, अहर्निश कोशिशों में लग जाने की है। यह समय का आसन्न तकाज़ा है कि फ़ासिस्टों की नंगी, क्रूर असलियत को लोगों के बीच नंगा किया जाये। उनके पास कॉरपोरेट घरानों का मीडिया है जो दिनों-रात झूठ की बारिश कर रहा है। लेकिन हमारे पास संख्याबल की ताक़त है। ज़रूरत है प्रयासों को एकजुट करने की। आज कवियों-लेखकों-कलाकारों को भी केवल सोशल मीडिया का सहारा छोड़कर गाँवों-शहरों के आम मेहनतकश गरीबों की झुग्गी-झोंपड़ियों तक जाना होगा और उनके भीतर जाति-धर्म की राजनीति और धार्मिक कट्टरपंथी फासिज़्म के विरुद्ध राजनीतिक चेतना पैदा करने के प्रयासों में लग जाना होगा। हमें इन तरीक़ों से फासिस्टों के प्रचार एवं शिक्षा के ज़मीनी नेटवर्क का मुकाबला करना होगा।

हम 'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों का भी आह्वान करते हैं। आप अगर एक मेहनतकश हैं तो अपने साथियों को समझाइए। उनके साथ मिलकर बैठिए, देश के हालात पर, अपनी ज़िन्दगी की बुनियादी समस्याओं पर, पूँजीवादी मीडिया की असलियत पर और उसके फैलाये झूठों पर उनके साथ चर्चा करिए। अगर आप एक विद्यार्थी या मध्यवर्ग के नागरिक हैं, तो अपने आस-पास की मज़दूर बस्तियों में जाइए। वहाँ अपने मित्रों और मज़दूरों की मदद से चलता-फिरता या स्थायी जगह वाला पुस्तकालय-वाचनालय बनाइए, सांस्कृतिक आयोजनों को बच्चों, युवाओं और नागरिकों की शिक्षा का माध्यम बनाइए, खेलकूद क्लब बनाइए, शहीदों की जयन्तियों पर आयोजन कीजिए, कोर्स की पढ़ाई-लिखाई में मज़दूरों की बच्चों की मदद के लिए अंशकालिक पाठशालाएँ लगाइए, स्त्री मज़दूरों और अन्य मज़दूरों के लिए रात्रि-पाठशालाएँ लगाइए, मज़दूरों को उनके अधिकारों के बारे में और पतित-निठल्ली ट्रेड यूनियनों के बरक्स नये सिरे से जुझारू मज़दूर आन्दोलन खड़ा करने के रास्तों के बारे में बताइये, रूढ़ियों, अन्धविश्वास और जाति-व्यवस्था तथा धर्मान्धता के विरुद्ध ज़मीनी तौर पर एक जुझारू सामाजिक आन्दोलन खड़ा करने के लिए शिक्षा एवं प्रचार का काम कीजिए। अगर आप सच्चे दिल से एक वाम, जनवादी, प्रगतिशील और सेक्युलर विचारों के व्यक्ति हैं, तो आपको यह करना ही होगा। आम लोगों के बीच जाइए, अपने अलगाव को समाप्त कीजिए, आपके सभी डर अपनेआप दूर हो जायेंगे।

फ़ासीवाद के विरुद्ध बीसवीं शताब्दी जैसी ही विकट और बीहड़ लड़ाई सर पर है। याद रखिए, अकेले भारत की आबादी पूरे यूरोप से लगभग दूनी है, और संघ एक नव-क्लासिकी ढंग की फ़ासिस्ट पार्टी है। यह भी याद रखिए कि विश्व-पूँजीवाद के असाध्य ढाँचागत संकट के इस दौर में फ़ासीवाद का उभार और पूँजीवादी जनवाद का क्षरण-विघटन पूरी दुनिया में जारी एक प्रवृत्ति है।

इतिहास के इस दौर में फ़िलहाल क्रान्ति की लहर पर उलटाव और प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है। बेशक यह निराशा, विभ्रम, ठहराव-बिखराव का दौर है। पर यह दौर स्थायी नहीं है। छोटे-छोटे प्रयासों और उद्यमों की कड़ी से कड़ी जोड़ते हुए प्रतिरोध की अप्रतिरोध्य शक्ति तैयार की जा सकती है।

माना कि हम अपने काम में काफ़ी पीछे हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि पहले से ही हार मान लें। पहले से ही हार मान लेने और हथियार डाल देने का मतलब होगा सभ्यता और मनुष्यता के विनाश पर अपने हाथों मुहर लगा देना। फ़ासिस्टों और निरंकुश बुर्जुआ सत्ताओं को अगर अपना खेल खेलने के लिए खुला छोड़ दिया जायेगा तो वे नरसंहारों, दंगों, युद्धों और पर्यावरण-विनाश के द्वारा मनुष्यता को ही तबाह कर देंगे। इसलिए, लड़ना तो होगा ही। और कोई विकल्प नहीं है। आप आगे बढ़कर कुछ पहल तो कीजिए, कुछ छोटी-छोटी शुरुआतें तो कीजिए। एक बड़ी शुरुआत की ज़मीन खुद ही तैयार होने लगेगी।

हमें व्यापक जन प्रचार के तरीके अपनाने होंगे, वैकल्पिक जन-मीडिया संगठित करना होगा और हर मोर्चे पर उन अतार्किक, अनैतिहासिक, अवैज्ञानिक विचारों के खिलाफ प्रचार चलाना होगा, जिनका इस्तेमाल करके फासीवादी ताकतें निराश और पिछड़ी चेतना वाले मध्य वर्ग और मजदूरों के बीच अपना सामाजिक आधार बनाने का काम करती हैं। जिस स्तर पर भी सम्भव हो, प्रगतिशील, सेक्युलर आम मध्यवर्गीय युवाओं और मज़दूरों को (इनमें स्त्री समुदाय भी शामिल है) ऐसे दस्तों में संगठित करने की राह निकालनी होगी, जो तृणमूल स्तर पर लम्पट-असामाजिक-आपराधिक तत्वों और फासीवादी गुण्डों से निपटने को तैयार हों।

जो संशोधनवादी पार्टियाँ फासीवाद-विरोध को मात्र चुनावी गँठजोडों तक सीमित कर देती हैं और सिर्फ संसद में गत्ते की तलवारें भाँजती हैं, इनके असली चरित्र को मेहनतकश जनता के सामने लाना भी बेहद ज़रूरी काम है। यही वे पार्टियाँ हैं जिन्होंने अर्थवाद, सुधारवाद और ट्रेड यूनियनवाद की राजनीति का मज़दूर आन्दोलन पर वर्चस्व स्थापित करके फासीवादी बर्बरता की चुनौती के सामने मजदूर वर्ग को वैचारिक-राजनीतिक रूप से निहत्था और अरक्षित बना दिया है। मज़दूर वर्ग की राजनीतिक तैयारी के बिना फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष महज एक खोखला नारा बना रहेगा।

हमें कतई इस गफ़लत में नहीं रहना होगा कि चुनावों में भाजपा को हराकर फ़ासीवाद को निर्णायक शिकस्त दी जा सकती है। फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई का मुख्य मोर्चा सड़कों पर ही बँधेगा। उसके लिए आज से ही फ़ासीवादियों की घिनौनी करतूतों, उनके काले इतिहास और उनके पूँजीपरस्त, धनलोलुप और लम्पट चरित्र का व्यापक पैमाने पर पर्दाफ़ाश करने की जुझारू मुहिम छेड़नी होगी।

क्या आप अवसाद ग्रस्त हैं?
दरअसल आप पूँजीवाद के शिकार हैं!

– अनिता

ज़िन्दगी की भागमभाग के बीच जब हम ठहरकर सड़कों, दफ़्तरों या स्कूलों-कॉलेजों में आते-जाते लोगों के चेहरों पर ग़ौर करते हैं तो पाते हैं कि आज के दौर में हर कोई अकेला, मायूस, ग़मगीन और तकलीफ़ों के बोझ से दबा दिखायी देता है। आज के समय की सच्चाई यह है कि हज़ारों ऑनलाइन दोस्त होने के बाद भी लोग दिल की बात किसी एक को भी बता नहीं पाते। दिल खोलकर हँसना, सामूहिकता का आनन्द लेना, बिना किसी स्वार्थ के किसी की मदद करना तो कल्पना की बातें हो गयी हैं; लोगों में नफ़रत, अविश्वास, बदहवासी, ऊब बढ़ रही है। 2018 में ही विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की एक रिपोर्ट आयी थी जिसमें यह पाया गया कि **दुनिया में सबसे ज़्यादा मानसिक अवसाद (डिप्रेशन) के शिकार लोग भारत में रहते हैं।**

इसी रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 6.5 प्रतिशत यानी लगभग 8.5 करोड़ लोग किसी न किसी प्रकार के मानसिक रोग से पीड़ित हैं। यह एक महामारी का रूप लेता जा रहा है। तमाम ऐसे भी लोग हैं जो हालात को सहन न कर पाने और जीवन में किसी प्रकार की उम्मीद न दिखायी देने से आत्महत्या कर बैठते हैं। वर्ष 2016 में ही भारत में क़रीब 2 लाख पचास हजार लोगों ने आत्महत्या कर लिया था। **दुनियाभर में आत्महत्या करने वाले लोगों में से 36.6 प्रतिशत भारत के होते हैं।** आम तौर पर लोगों के व्यक्तिगत जीवन में रही परेशानियों को ही अवसाद का कारण माना जाता है, लेकिन वे तो तात्कालिक कारण होते हैं। अगर आज ये समस्या महामारी का रूप ले चुकी है तो निश्चय ही इसकी जड़ें समाज के ढाँचे में ही होंगी और हमें और गहराई में जाकर इसकी पड़ताल करनी होगी।

मानसिक अवसाद की समस्या मध्य वर्ग में बड़े पैमाने पर व्याप्त है। उत्पादन की प्रक्रिया और शारीरिक श्रम से कटे मध्य वर्ग के लोग बहुत सारी चीज़ों का इस्तेमाल तो करते हैं लेकिन चीज़े कैसे बनती हैं, उससे अनजान रहते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि दरअसल श्रम ही वह चीज़ है जिसने इन्सान को इन्सान बनाया क्योंकि वानर से नर बनने की प्रक्रिया श्रम की बदौलत ही मुमकिन हुई। आज के दौर में इन्सान के अलगाव का मूल कारण यही है। अलगाव के शिकार लोगों को जीवन के किसी भी पहलू के बारे में कोई दिलचस्पी नहीं रहती, वे हर चीज़ से बेपरवाह रहते हैं।

आज के दौर में समाज के आम मेहनतकश लोगों में भी अलगाव देखने को मिलता है। कारख़ानों में बेहद कठोर श्रम करने के बाद भी रोज़ की रोटी जुटाना मुश्किल रहता है, लेकिन मेहनतकशों के श्रम का शोषण करके ही पूँजीपति ऐशो-आराम की ज़िन्दगी जीता है। मज़दूरों को यह एहसास रहता है कि उनकी हाड़-तोड़ मेहनत से जो चीज़ बन रही है वह उनकी नहीं है। ऐसे में मज़दूरों का भी काम में मन नहीं लगता और दिन की थकान, आत्मसम्मान पर लगी लगी चोट और शोषण से निजात पाने में बेबसी उन्हें अवसाद की अवस्था तक पहुँचा देती है।

अलगाव का शिकार इन्सान अगर अपने अलगाव को दूर करने के बारे में सचेतन कोशिश नहीं करता तो वह मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं से दूर होता जाता है। उसमें सही-ग़लत, न्याय-अन्याय अच्छा-बुरा तय करने की क्षमता ख़त्म होती जाती है। उसे प्रेम, दुख-सुख आदि जैसी संवेदनाएँ महसूस नहीं होतीं जिसकी वजह से वह दूसरे इन्सानों से भी कटता जाता है। वह सभी को शक़ और अविश्वास के नज़रिये से देखने लगता है और किसी से भी अपने मन की बात कह नहीं पाता। हालात ऐसे बनने लगते हैं कि वह खुद से भी कटता जाता है। उसे ज़िन्दगी के प्रति निराशा होने लगती है, किसी चीज़ के प्रति मोह और दिलचस्पी नहीं रह जाती। ऐसे लोग अपनी सृजनशीलता खो बैठते हैं और अकेले गुमसुम बिना किसी लक्ष्य और महत्वकांक्षा के खोये-खोये रहते हैं।

सामाजिक अलगाव, बेरोज़गारी, मँहगाई, तंगी, विभेद, शोषण, हिंसा भरी इस पूँजीवादी दौर में, लोग एक-दूसरे को महज़ प्रतिस्पर्धी मानने लगते हैं। दूसरों की ख़ुशी से उन्हें ख़ुशी नहीं मिलती, दूसरों के ग़म से उन्हें ग़म नहीं होता। एक साथ टीम में काम करने वाले लोग भी एक-दूसरे से ईर्ष्या भाव पाले रहते हैं, ख़ुद की ज़रूरतें पूरी न होने की असुरक्षा के चलते दूसरों को पीछे खींचने की फ़िराक़ में रहते है। मानवीय मूल्य, सच्ची दोस्ताना भावना और इन्सानी प्रेम की स्थिति नहीं रहती।

इसके अलावा कश्मीर और उत्तरपूर्वी भारत के राज्यों में भारतीय राज्यसत्ता द्वारा किये जा रहे सैन्य दमन की वजह से भी उन इलाक़ों में मानसिक अवसाद की घटनाओं में ज़बर्दस्त बढ़ोत्तरी हो रही है। इन इलाक़ों में सेना को असीमित अधिकार दे दिये गये हैं। कश्मीर घाटी में 9 लाख से ज़्यादा सैनिक तैनात करके लगातार कर्फ़्यू लगाया जा रहा है, शान्तिपूर्ण प्रर्दशन पर भी रोक लगायी जा रही है और पैलेट गन का इस्तेमाल करना और लोगों को बिना किसी मुद्दे के गिरफ़्तार करना आम बात होती जा रही है। रोज़मर्रा के जीवन की आवश्यक चीज़ें, और संचार के साधन फ़ोन, इण्टरनेट पर भी सख़्ती से रोक लगायी जा रही है। ऐसे में ग़ुस्सा, परेशानी, ख़ौफ़ के बढ़ते जाने से लोग मानसिक अवसाद के शिकार बनने लगते हैं। कुछ दशकों पहले तक ख़ुशहाल माने जाने वाले कश्मीर में अभी बहुतेरे लोग मानसिक अवसाद के शिकार हो रहे हैं। 1985 में कश्मीर में मानसिक रोगियों की संख्या महज़ 775 थी जबकि 2015 में यह बढ़कर 1 लाख 30 हज़ार तक जा पहुँची।

आज के दौर में बच्चे भी मानसिक अवसाद से गुज़र रहे है। छोटी उम्र में ही हमउम्र दोस्तों के साथ हो रही तीव्र प्रतिस्पर्धा, तुलना और भविष्य को लेकर डाले जाने वाले अधिक दवाब की वजह से बच्चे सहज बचपन नहीं गुज़ार पाते। यह भी सामने आया है कि हर साल बहुत से बच्चे परीक्षाओं के समय आत्महत्या कर बैठते हैं। 'इकोनॉमिक टाइम्स' की रिपोर्ट के मुताबिक़ भारत में हर घंटे एक विद्यार्थी आत्महत्या करता है। आम घरों में अलगाव और अवसाद को सही से समझा ही नहीं जाता, और ऐसे भी लोग मिलते हैं जो खोखली सामाजिक प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए मानसिक अवसाद जैसी समस्या को छुपाते हैं। डॉक्टरों से आवश्यक परामर्श व दवा-इलाज कराने की बजाय ऐसे लोगों को समाज से अलग करके एक कोने में पड़े रहने के लिए छोड़ दिया जाता है। भारत में वैसे तो सभी तरह के डॉक्टरों की संख्या बेहद कम है, लेकिन मनोचिकित्सकों की संख्या तो रागियों की तुलना में नहीं के बराबर है।

अलगाव व अवसाद की इस महामारी से निजात पाने के लिए मुनाफ़े, लोभ-लालच और एक-दूसरे से आगे निकलने के लिए अन्धी प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने वाली पूँजीवादी व्यवस्था को ख़त्म करना होगा। पूँजीवाद का ख़ात्मा करके समानता और न्याय पर आधारित एक नया समाज बनाने के संघर्ष से जुड़ना अपनेआप में अलगाव और अवसाद दूर करने का बेहतरीन तरीक़ा है। इस प्रक्रिया में हम ज़िन्दगी को क़रीब से देखते हैं और मेहनतकशों के जीवन-संघर्ष से जुड़कर हम श्रम का महत्व गहराई से समझते हैं और ज़िन्दगी से प्यार करने के असली मायने समझते हैं। इसके अलावा जब भी सम्भव हो, प्रकृति के बीच समय बिताना चाहिए क्योंकि अलगाव का एक कारण प्रकृति से कटाव भी होता है। लोगों को साथ दोस्ती करने और दिल खोलकर बातें करके, कला साहित्य और संगीत जैसी सृजनात्मक कामों में दिलचस्पी बढ़ाकर भी बेगानेपन पर एक हद तक क़ाबू पाया जा सकता है।

क्या आतंकवाद वाक़ई देश और दुनिया की सबसे बड़ी समस्या है?

– अनुपम

अख़बारों और टीवी चैनलों से लेकर सोशल मीडिया तक में अक्सर आतंकवाद का मुद्दा छाया रहता है। टीवी स्टूडियो और अख़बारों के सम्पादकीय पृष्ठों पर देश के नामी-गिरामी रक्षा विशेषज्ञ और रिटायर्ड पुलिस अधिकारी व नौकरशाह हमें बताते हैं कि आतंकवाद देश की सबसे बड़ी समस्या है। हमें बताया जाता है कि देश के बाहर और भीतर देश को कमज़ोर करने वाली ताक़तें आतंकी कार्रवाइयाँ अंजाम देने का षडयंत्र रच रही हैं। सरकार भी इन विशेषज्ञों की राय को संजीदगी से लेते हुए हर साल रक्षा बजट में इज़ाफ़ा करती रहती है। लेकिन अगले साल आतंकवाद का मुद्दा और ज़्यादा ज़ोर-शोर से उछलने लगता है और सैन्यबलों के आधुनिकीकरण की माँग पहले से भी ज़्यादा ज़ोर पकड़ने लगती है। सिर्फ़ हमारे ही देश के नहीं, बल्कि दुनियाभर के हुक्मरान आतंकवाद को सबसे बड़ी समस्या और चुनौती के रूप में पेश करते रहे हैं। ये बात दीगर है वे कभी भी आतंकवाद को बढ़ावा देने में ख़ुद की भूमिका की कभी बात नहीं करते।

इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि हाल के दशकों में आतंकवाद दुनियाभर में एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। लेकिन क्या भारत जैसे पिछड़े पूँजीवादी मुल्क में यह सबसे बड़ी समस्या है? क्या इस देश में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, आवास, पेयजल आदि जैसे मुद्दे अब गौण हो गये हैं? आतंकवाद से आतंकित हुए बिना आइए ठोस आँकड़ों की मदद से ठण्डे दिमाग से इन सवालों के जवाब ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं।

'साउथ इंडिया टेररिज़्म पोर्टल' के एक आँकड़े के मुताबिक़ भारत में वर्ष 2017 में पूरे देशभर में 178 छोटी-बड़ी आतंकी घटनाएँ हुईं जिसमें 77 लोगों की मौतें हुईं। उसी वर्ष 11 अगस्त से 15 अगस्त के बीच गोरखपुर में 79 बच्चे केवल पाँच दिन में ही मौत की नींद में सुला दिए गए। ये बच्चे किसी आतंकी हमले में नहीं बल्कि समय पर ऑक्सीजन न मिलने की वजह से इस दुनिया में नहीं रहे।

भारत रक्षा-व्यय के मामले में चौथा सबसे अधिक ख़र्च करने वाला देश है। यहाँ पर रक्षा बजट 2017-18 कुल 4.31 लाख करोड़ था। यह धनराशि वर्ष 2017-18 के स्वास्थ्य बजट की दोगुनी है। भारत में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से होने वाली मौते कुल मौतों की 90 प्रतिशत हैं जबकि आतंकी घटनाओं में हुई मौतों का प्रतिशत केवल 0.07 प्रतिशत है। ऐसे में अगर केवल आम जनता के हित में आतंकवाद से लड़ने के लिए ही सैन्य ख़र्च बढ़ाया जा रहा है तो लोगों की भलाई के लिए क्या ठीक रहेगा स्वास्थ्य पर खर्च बढ़ाया जाए या सेना पर?

विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त स्वास्थ्य से जुड़े आँकड़े बताते हैं कि:

भारत में एक व्यक्ति के जीवन का वह आयुकाल जिसमें वह अधिकतम उत्पादन करने में सक्षम होता है, केवल साढ़े छह वर्ष है। यह आयुकाल चीन में 20 वर्ष, ब्राजील में 16 वर्ष और श्रीलंका में 13 वर्ष है। 'इंटरनेशनल रैंकिंग ऑफ ह्यूमन कैपिटल' की इस रिपोर्ट में जो सूची दी गयी है उसमें भारत का स्थान 195 देशों में 185वाँ है।

भारत में वित्तीय वर्ष 2017-18 में जीडीपी का 1.4 प्रतिशत स्वास्थ्य पर ख़र्च किया गया जबकि मालदीव, श्रीलंका और भूटान जैसे देशों ने इसी वित्तीय वर्ष में स्वास्थ्य पर अपने-अपने देश की जीडीपी का क्रमशः 9.4, 1.6 और 2.5 प्रतिशत ख़र्च किया।

अब अपने देश की बात करें, यदि भय और असुरक्षाबोध को आतंकवाद का पैमाना माना जाए तो अपने देश में तो भयंकर असुरक्षाबोध है। 2012 की लेन्सर्ट रिपोर्ट के अनुसार, यहाँ हर घंटे एक छात्र आत्महत्या करता है। हर साल यहाँ 1,600 से भी अधिक लोग मौसम के कहर के शिकार होकर मर जाते हैं। WHO की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार भारत दुनिया का सबसे अधिक अवसादग्रस्त देश है, इसके अतिरिक्त महिला सुरक्षा के मामले में यह एक अन्य रिपोर्ट (थॉमसन रायटर्स की एक रिपोर्ट) के अनुसार, दुनिया का चौथा सबसे अधिक असुरक्षित देश है।

यदि लोगों की मृत्यु के बजाय आतंकवाद से उत्पन्न भय और असुरक्षाबोध को ध्यान में रखकर यह कहा जाये कि आतंकवाद भारत में सबसे बड़ी समस्या है क्योंकि यह लोगों के दिलों में किसी दुर्घटना का ख़ौफ़ पैदा किए हुए है तो यह भी सोचना होगा कि उससे ज्यादा ख़ौफ़ तो लोगों में इस बात को लेकर है कि बेरोज़गारी और मँहगाई के रहते उनकी मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी हो भी पाएँगी या नहीं। सड़क, अस्पताल और स्कूल जैसी सुविधाओं की बात यदि न भी की जाए तो भी स्थिति कहीं से भी बेहतर नहीं दिखती। लेकिन फिर भी हवाई वादे हर चुनाव में होना कोई नयी बात नहीं। हर पार्टी यह सब्ज़बाग़ दिखाती है कि वह सत्ता

(पेज 7 पर जारी)

‘अन्वेषण’ : कला के असली सर्जकों तक कला को ले जाने की अनूठी पहल

जो सर्जक हैं,
रचते हैं,
जीवन की बुनियादी शर्तें
और गाते हैं,
चलो, उनसे
उम्मीदों की उम्र,
सपनों की गहराई
और उड़ान की ऊँचाई
माँग लायें,
अनाज की पूलियों
की तरह
लादकर घर लायें।

– शशिप्रकाश

यह कविता दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में छात्र-युवा कलाकारों की संस्था ‘प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स लीग’ द्वारा शुरू की गई मुहिम ‘अन्वेषण’ को सटीक ढंग से अभिव्यक्त करती है। ‘अन्वेषण’ का मक़सद कला को आर्ट गैलरी की दीवारों से बाहर उतारकर ज़िन्दगी के बीच लाना है। इस मुहिम का मक़सद जीवन की बुनियादी शर्तों को रचने वाले सर्जकों के बीच जाकर जीवन के गरम ताप से कला को सींचना है। हमने अन्वेषण के तहत बवाना, वज़ीरपुर, नांगलोई के औद्योगिक क्षेत्रों में, इन इलाक़ों से सटे रिहायशी क्षेत्रों में फोटोग्राफ़ी की, स्केच बनाये, चित्र बनाये और लोगों से कला के बारे में, उनकी ज़िन्दगी के बारे में बातचीत की। इस दौरान किये गये कलाकर्म को लोगों के बीच प्रदर्शित भी किया। इस दौरान हमारे जो अनुभव रहे उन्हें हम यहाँ साझा कर रहे हैं।

बवाना और नांगलोई में खींची कई तस्वीरें विचलित करने वाली हैं और कई अर्थों में कुरूप लगती हैं, परन्तु उनमें सामाजिक जीवन की ठोस सच्चाई है। बवाना औद्योगिक क्षेत्र में 5 सेक्टर हैं। सेक्टर 5 के पास ही मज़दूरों का रिहायशी इलाक़ा मेट्रो विहार है। इस इलाक़े में सूरज अलग तरह से उगता है। एक तरफ़ फ़ैक्ट्रियाँ हैं तो दूसरी तरफ़ खेत और उसके बीच में रिहायशी इलाक़े में हम थे। मज़दूरों के रिहायशी इलाक़े की आड़ी-तिरछी 12 और 18 फ़ुट के घरों की आकृतियों के बीच टूटी सड़क पर हमें कई लोग आते-जाते हुए मिले। सूरज पूरी तरह उगने पर हमें फ़ैक्ट्री से काम कर घर लौटते मज़दूर मिले जो थककर चूर थे। थोड़ी देर में ही स्कूल जाते बच्चे मिले जो हमें देखते, मुस्कुराते और आगे बढ़ जाते। थोड़ी देर में काम पर जाते मज़दूरों का ताँता लग गया। आधे घण्टे में एक सड़क से क़रीब दो-तीन हज़ार मज़दूर गुज़र रहे थे। सभी तारोताज़ा दिख रहे थे। कुछ ख़ुश दिख रहे थे और आपस में बात करते हुए जा रहे थे तो कुछ बिल्कुल चुप और शून्य में ताकते हुए चले जा रहे थे। ऐसा महसूस होता था जैसे कोई ताक़त उन्हें खींच रही हो। उनके क़दमों में एक तेज़ी थी। कुछ मज़दूर रुककर हमसे बात कर रहे थे और जिज्ञासा के साथ हमें समझने की कोशिश कर रहे थे। युवा महिलाएँ बच्चों के साथ फ़ैक्ट्री जा रही थीं जिन्हें वे फ़र्श पर खेलने के लिए छोड़ देंगी क्योंकि किसी भी फ़ैक्ट्री में क्रेच नहीं है। तीस साल से ज़्यादा उम्र के मज़दूर बूढ़े से लगने लगे थे, उनमें ज़्यादातर शर्ट-पैण्ट पहने थे। नौजवान ज़्यादा ख़ुश थे जिनमें बहुत से मज़दूर जीन्स और टीशर्ट पहने थे। कानों में ठेपी लगाए, मुँह में गुटखा या पान चबाये हुए मज़दूर भी काफ़ी संख्या में थे। जीवन की रेखाएँ यहीं खिंच रही थीं। ये लोग ही जीवन की बुनियादी शर्तें पैदा करते हैं। परन्तु इनका जीवन एक थोपे हुए अनुशासन में था। विशालकाय इण्डस्ट्रियल एरिया सभी मज़दूरों को अपनी ओर खींचकर सोख रहा था।

वज़ीरपुर में तो ऐसा लगा मानो हम किसी नरक लोक में आ गये हों। यह वह नरक है जहाँ हमारे जीवन की ज़रूरतें पैदा होती हैं। परन्तु मज़दूर हर ताप और हर मुश्किल में काम करते जीवन को गढ़ रहे थे। इन तस्वीरों को हम फ़िलहाल पूरी तरह सोख भी नहीं पाये हैं और ये तस्वीरें शब्दों से ज़्यादा खुद ही बोलती हैं।

नांगलोई की गलियों में बेहद ग़रीबी है। एक घर में ज़मीन पर एक स्त्री लेटी हुई थी जिसने पूछा कि क्या काम है और यह बताने पर कि हम कलाकार हैं और तस्वीर लेना चाहते हैं वह वैसे ही लेटी रही। उसके साथ लेटा बच्चा इस दौरान उत्सुक था, परन्तु वह इस सब से बेगानी थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि वह हर चीज़ से दूर है। उसका वह भाव, उसका अपने आप से, अपने आसपास की हर चीज़ से अलगाव विचलित करता है। अधिकतर घरों में सड़ी हुई नाली के ऊपर ही खाना बनाने की मजबूरी और गन्दगी में बच्चों का खेलना यहाँ आम बात है। उसपर पहली बार में लोग शिकायत नहीं करते प्रतीत होते। परन्तु थोड़ा सा कुरेदते ही लोगों के अन्दर से सरकारों और अमीरों के प्रति ग़ुस्सा बह निकलता है।

बवाना में हमने बच्चों को कुछ चित्र बनाने के लिए दिये। बच्चों ने हमारे, सड़कों पर खड़े वाहनों के और स्कूल में सिखाये चित्रों को बनाया और हमने इस दौरान उन्हें देखने के तरीके बारे में बताया। बच्चे दुनिया को जिस नज़र से देखते हैं उसमें नयापन होता है।

सबसे ज़्यादा प्रभाव डालने वाला अनुभव मज़दूरों के बीच लगाई प्रदर्शनी के दिन मिला। लोग फोटोग्राफ़ में खुद को देख रहे थे। देर तक लोग जमे रहे और हम लागों से बात करते रहे। वे बहुत ख़ुश थे। उन तस्वीरों के सौन्दर्यबोध पर भी बातचीत हुई, हालाँकि उनके पास तकनीकी शब्द नहीं थे। फ़ोटो के रंगों और भावों पर लोग बात कर रहे थे। सबसे अधिक खुश बच्चे दिख रहे थे और पूरी प्रदर्शनी के दौरान दर्जनों बच्चे हमारे चारों ओर चहकते रहे। इस प्रदर्शनी ने हमारे मक़सद को सही साबित किया है। बेशक यह एक बहुत छोटी शुरुआत है, मगर एक शुरुआत तो है।

– विशाल

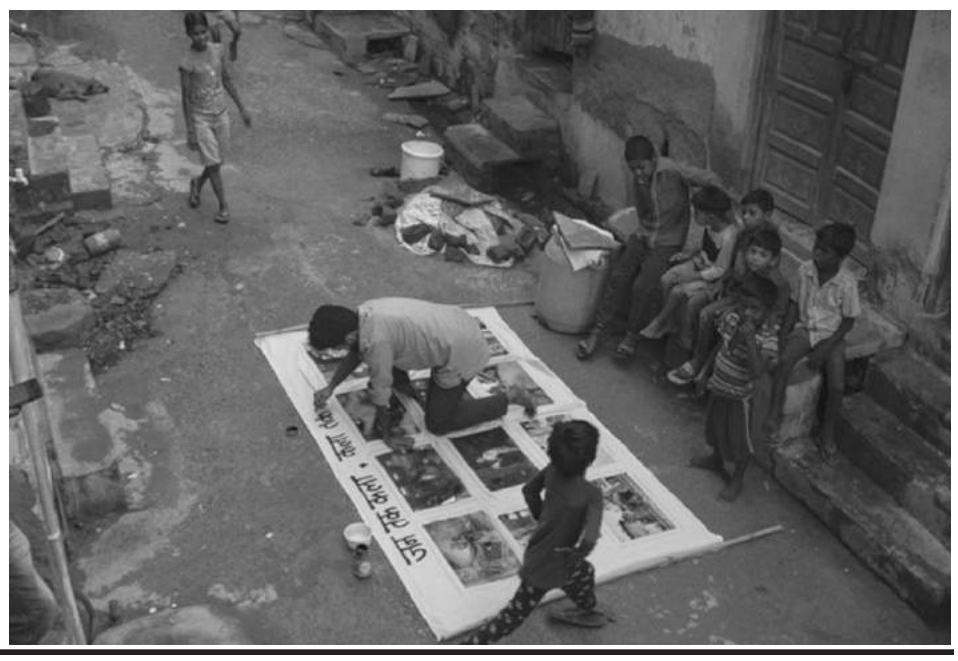

‘हरे-भरे पूँजीवाद’ (‘ग्रीन कैपिटलिज़्म’) की असलियत

पूँजीवाद के ख़ूनी नाख़ूनों पर हरी नेल पॉलिश लगाने की क़वायद

– आनन्द सिंह

पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़ा पैदा करते रहने की नयी-नयी तरक़ीबें निकाली जाती हैं। यहाँ तक कि किसी संकट का इस्तेमाल भी इस व्यवस्था में बेतहाशा मुनाफ़े की दर को क़ायम रखने के लिए किया जाता है। मुनाफ़े की अन्धी हवस में जब पूँजीवाद कुदरत को नष्ट करने पर आमादा हो चुका है तो पूँजीवाद के भीतर से ही ऐसे रुझान उभर रहे हैं जो मुनाफ़े के दर को क़ायम रखने के साथ ही साथ पूँजीवाद की उम्र लम्बी करने की तरक़ीबें बता रहे हैं। ‘हरा-भरा पूँजीवाद’ (‘ग्रीन कैपिटलिज्म’) ऐसी ही एक मुहिम है। इस मुहिम के समर्थक पूँजीवादी विकास को टिकाऊ और सतत बनाने के लिए ऐसी तकनोलोजी का इस्तेमाल करने की वकालत करते हैं जिनसे कम्पनियों का मुनाफ़ा बरक़रार रहे और पर्यावरण को नुक़सान भी न हो। हर माल की तरह ऐसी ‘हरी तकनोलोजी’ की भी इन दिनों ख़ूब मार्केटिंग और ब्राण्डिंग की जा रही है और हर माल की ही तरह उनके विज्ञापन के लिए सेलिब्रिटी का इस्तेमाल किया जा रहा है और नये सेलिब्रिटी पैदा किये जा रहे हैं।

‘हरी तकनोलोजी’ के इस्तेमाल को बढ़ावा देने के लिए बच्चों का भी ज़बरदस्त इस्तेमाल किया जा रहा है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 16 वर्षीय स्वीडिश लड़की ग्रैता तुनबैर है जो पिछले एक वर्ष के दौरान दुनियाभर में ख़ासी चर्चित हो चुकी है। ग्रैता को हाल ही में नोबल शान्ति पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया है जिसके बाद से उसकी लोकप्रियता और बढ़ गयी है। ग्रैता तुनबैर के वीडियो दुनियाभर में देखे जा रहे हैं जिसमें वह हुक्मरानों को कोसती है कि उन्होंने पर्यावरण के विनाश को रोकने के लिए पर्याप्त काम क्यों नहीं किया। ग्रैता दुनियाभर के बच्चों और युवाओं का आह्वान करती है कि वे भी उसकी तरह स्कूल से छुट्टी लेकर जलवायु हड़ताल में शामिल हों। बेशक ग्रैता के भावनात्मक सन्देशों से दुनियाभर में जलवायु के मुद्दे के प्रति जागरूकता बढ़ी है और ग्रैता की नीयत पर शक करने का कोई आधार नहीं है। लेकिन यह बात भी समझने की है कि इतने कम समय में ग्रैता की अपार लोकप्रियता अपने आप होने वाली परिघटना नहीं है। इसमें मार्केटिंग और ब्राण्डिंग की बहुत बड़ी भूमिका है। पिछले एक साल के दौरान सुनियोजित ढंग से एक सोची-समझी रणनीति के तहत अन्तरराष्ट्रीय मीडिया में ग्रैता की छवि एक बाल जलवायु कार्यकर्ता के रूप में बनायी गयी।

जिन संस्थाओं और व्यक्तियों ने ग्रैता को अन्तरराष्ट्रीय हस्ती बनाने में भूमिका अदा की उनकी पृष्ठभूमि पर एक झलक डालते ही उनकी मंशा समझ में आने लगती है। ग्रैता की लोकप्रियता की कहानी पिछले साल 20 अगस्त से शुरू होती है जब ‘वी डोण्ट हैव टाइम’ (‘हमारे पास अब समय नहीं है’) नामक संस्था के कर्ता-धर्ता स्वीडन के इंगमार रेंज़ोग ने ट्वीट किया कि 15 साल की एक लड़की जलवायु के मुद्दे पर लोगों का ध्यान खींचने के लिए स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में संसद के सामने तख़्ती लेकर विरोध करने के लिए बैठी है। देखते ही देखते सोशल मीडिया पर यह ख़बर वायरल हो गयी। उसके बाद मुख्य धारा की मीडिया में भी ग्रैता तुनबैर का नाम छा गया। ‘वी डोण्ट हैव टाइम’ एक तकनीकी स्टार्ट अप कम्पनी है जो सोशल मीडिया, डिजिटल विज्ञापन और कार्बन ऑफ़सेटिंग के क्षेत्रों में सक्रिय है। यह जलवायु कार्रवाई का सबसे बड़ा नेटवर्क बनाने के लिए कृतसंकल्प है जिसमें लोग कम्पनियों को उनके पर्यावरण सम्बन्धी रिकॉर्ड और ‘हरी तकनोलोजी’ के उपयोग के आधार पर रेटिंग देते हैं।

ग़ौरतलब है कि ‘वी डोण्ट हैव टाइम’ भले ही ख़ुद को अलाभकारी संस्था कहती हो, लेकिन उसके सलाहकार बोर्ड में रिटेल कम्पनी आइकिया जैसे दैत्याकार बहुराष्ट्रीय निगम भी शामिल हैं। इसके अलावा इस कम्पनी की एक पार्टनर अमेरिका के पूर्व उपराष्ट्रपति अल गोर की संस्था ‘क्लाइमेट रियैलिटी प्रोजेक्ट’ है जो लम्बे समय से जलवायु परिवर्तन के ख़तरे को टालने के लिए ‘हरी तकनोलोजी’ को बढ़ावा देने पर ज़ोर देती है और इस प्रक्रिया में पूँजी निवेश के नये क्षेत्र खोलने की वकालत करती है।

इस प्रकार दैत्याकार कॉरपोरेट द्वारा प्रायोजित ‘अलाभकारी औद्योगिक कॉप्लेक्स’ से जुड़े तमाम एनजीओ कम्पनियों को मुनाफ़ा कमाने के नये क्षेत्रों में निवेश करने के सुझाव दे रहे हैं और उनको यह यक़ीन दिलाने में लगे हैं कि इससे मुनाफ़े के संकट को भी दूर किया जा सकता है। इनके द्वारा सुझायी गयी तकनोलोजी और नीतियों में कार्बन कैप्चर एण्ड स्टोरेज, इनहान्स्ड ऑयल रिकवरी, बायो इनर्जी विद कार्बन कैप्चर एण्ड स्टोरेज, रैपिड टोटल डीकार्बनाइजेशन आदि शामिल हैं जिनके लिए क़रीब 100 ट्रिलियन डॉलर के निवेश और इन्फ्रास्ट्रक्चर खड़ा करने की बात की जा रही है जिससे ठहरावग्रस्त पूँजीवाद को गति दी जा सकती है।

ग्रैता तुनबैर और ‘हरी तकनोलोजी’ को बढ़ावा देने वाली तमाम कम्पनियाँ और एनजीओ अपने लक्ष्य के रूप में जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी ‘पेरिस समझौते’ को लागू करने की बात करते हैं। ग़ौरतलब है कि ‘पेरिस समझौते’ में नाभिकीय ऊर्जा के उपयोग को विस्तारित करने, प्रकृति का वित्तीयकरण करने और संसाधनों के निजीकरण की रफ़्तार तेज़ करने और कार्बन-डाई-ऑक्साइड का उत्सर्जन कम करने की बात कही गयी है। यानी ‘हरे-भरे पूँजीवाद’ के समर्थक उस समझौते को मुस्तैदी से लागू करवाना चाहते हैं जिसे दुनिया भर के पूँजीवादी हुक्मरानों ने स्वयं किया है। ग्रैता भी अपने वीडियो में कभी भी पूँजीवाद पर निशाना नहीं साधती बल्कि ऐसी कम्पनियों पर सवाल उठाती है जो पर्यावरण को नुक़सान पहुँचाने वाली पुरानी तकनोलोजी का इस्तेमाल करती हैं। वह पूँजीवाद के ही दायरे में ऐसी तकनोलोजी के इस्तेमाल की बात करती है जो पर्यावरण को नुक़सान नहीं पहुँचातीं या कम नुक़सान पहुँचाती हैं।

पिछले एक साल के दौरान यूएनओ से लेकर विश्व आर्थिक मंच तक ग्रेटा को ख़ुशी-ख़ुशी अपनी बात कहने का मौक़ा दिया गया और अन्तरराष्ट्रीय मीडिया ने भी उसे सेलिब्रिटी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ग्रैता इन मंचों से दुनियाभर के हुक्मरानों को कोसती है, लेकिन वह नाइंसाफ़ी, लूट-खसोट और कुदरत के बेहिसाब दोहन पर टिके पूँजीवादी निज़ाम के विकल्प की कोई बात नहीं करती, इसलिए हुक्मरानों को उसे अपने मंच पर बुलाने से कोई गुरेज़ नहीं होता।

‘हरे-भरे पूँजीवाद’ की वकालत करने वाले लोगों की बातें ऊपरी तौर पर तो बहुत प्रगतिशील लगती हैं क्योंकि वे पर्यावरण के विनाश को रोकने से सम्बन्धित होती हैं। लेकिन थोड़ा गहराई से पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि वास्तव में ऐसे लोग यह भ्रम पैदा करते हैं कि पूँजीवाद के रहते सतत और टिकाऊ विकास सम्भव है। यानी पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों में कोई बदलाव करने की ज़रूरत नहीं है, ज़रूरत तो बस तकनोलोजी में बदलाव करने की है। इनका मक़सद मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से जूझ रहे पूँजीवाद को मुनाफ़ा कमाने के नये क्षेत्र व अवसर मुहैया कराना होता है।

ऐसे में लोगों को यह बताने की ज़रूरत है कि पर्यावरण के विनाश को तब तक नहीं रोका जा सकता जब तककि मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यस्था का नाश करके एक ऐसी व्यस्था का निर्माण किया जाये जहाँ प्रकृति के संसाधनों का दोहन बेहिसाब न हो बल्कि योजनाबद्ध हो। यानी पर्यावरण को बचाने की लड़ाई पूँजीवाद का विकल्प खड़ा करने की लड़ाई से अभिन्न रूप से जुड़ी है। ग्रैता तुनबैर और ‘हरे-भरे पूँजीवाद’ के तेवर ऊपर से भले ही गरमा-गरम दिखते हैं, लेकिन चूँकि उनकी बातों में यह अहम कड़ी ग़ायब रहती है इसलिए उनके द्वारा फैलायी गयी जागरूकता पर्यावरण के विनाश को रोकने में कारगर नहीं हो सकती।

आम मेहनतकश जनता पर मन्दी की मार तेज़ होती जा रही है

(पेज 16 से आगे)

है और उस रक़म से भी कॉरपोरेट को मदद करती है। चुनाव प्रचार में भाजपा सहित किसी भी पार्टी ने नहीं कहा था कि सत्ता में आने पर वह सरकारी उपक्रमों को बेचेगी, यानी जनता से इसके लिए कोई सहमति नहीं ली गयी थी, मगर चुनाव जीतते ही मोदी सरकार ने कई सरकारी उपक्रमों को बेचने का ऐलान कर दिया। इस साल सरकारी उपक्रमों में सरकार की हिस्सेदारी बेच कर 90,000 करोड़ रुपये बनाने का लक्ष्य रखा है। एचपीसीएल, ओएनजीसी, बीएसईएल, एचएएल, सेल जैसे फ़ायदे में चलने वाले और बुनियादी उत्पादन के काम में लगे सरकारी उपक्रमों की कुछ हिस्सेदारी सरकार ज़रूर बेचेगी। पिछले कुछ सालों में सरकार ने सरकारी उपक्रमों से अत्यधिक डिविडेंड वसूला और उनकी हालत कमज़ोर कमज़ोर कर दी और फिर एलआईसी को सरकारी उपक्रमों में शेयर होल्डर बनवाया। सरकार सरकारी उपक्रम में खुद की भागीदारी को एलआईसी को भी बेच देती है और उससे मिले पैसे से अपने घाटे की पूर्ति करती है। इसका मतलब जनता की ही जमा पूँजी से जनता की सम्पत्ति खरीद ली जाती है और उस पैसे का इस्तेमाल पूँजीपतियों को मदद करने में किया जाता है। इसी तरह सरकारी उपक्रमों और प्राइवेट फाइनेंस कम्पनियों में निवेश करवा के सरकार ने एलआईसी को 57000 करोड़ का नुक़सान पहुँचाया जो कि सीधे आम जनता का नुक़सान है।

निजीकरण द्वारा सरकारी उपक्रमों को सीधे पूँजीपतियों को भी औने-पौने दाम पर बेच दिया जाता है। नुक़सान में जाते हुए सरकारी उपक्रम जब मन्दी के दौर में सस्ते में बिकेंगे तो पूँजीपतियों को उससे भी फ़ायदा होगा। सरकारी उपक्रम की बिक्री से जो पूँजी बनती है, उसे बैंकों के एन.पी.ए की भरपाई के लिए उपयोग करते हैं और बैंक फिर से कॉरपोरेट घरानों को क़र्ज़ देने सक्षम हो जाते हैं। सरकार तब तक क़र्ज़ देती रह सकती है जब तक आख़िरी सरकारी सम्पत्ति बिक सकती है। सरकार जो क़र्ज़ लेती है उसमें भी पिछले कुछ समय में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई है। 2014 में सरकार के ऊपर 54.9 लाख करोड़ का क़र्ज़ था जो पाँच साल में बढ़ के 88.18 लाख करोड़ हो चुका है। इसकी भरपाई भी सार्वजनिक सम्पत्ति और संसाधनों को बेचकर ही की जाएगी। रेल, सड़कों, अस्पतालों, सरकारी कम्पनियों, एयरलाइन, कोयला खदानों इत्यादि सभी का निजीकरण तय है। पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के तौर पर सरकार मन्दी के दौर में जनता के पैसों को पूँजीपतियों तक पहुँचाने के लिए हर तिकड़म कर रही है। पूँजीवाद के इंजन को मुनाफ़ा चाहिए। यह योजनाबद्ध उत्पादन नहीं है। यह मुनाफ़े पर टिका उत्पादन है। बाज़ार में यदि मन्दी है तो पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी तो कोशिश यही करेगी की मुनाफ़े का इंजन न रुके। इसलिए कार्पोरेट घरानों के मुनाफ़े की सभी नीतियाँ बन रही हैं। मगर पूँजीपतियों को इतने मुनाफ़े देने वाली सरकार मन्दी, बेरोज़गारी और डूबती अर्थव्यवस्था के समय में आम जनता पर पेट्रोल और डीज़ल का बोझ तक कम नहीं करती। कुछ दिन पहले पेट्रोल के दामों में प्रति लीटर 2-2.50 रुपये की वृद्धि की गयी जो इस साल की सबसे बड़ी वृद्धि है।

लोगों को सरकार के खोखले वादों से सावधान रहना चाहिए। विकास दर को 7 और 8 प्रतिशत तक पहुँचाने और 5 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था बनाने के सब्ज़बाग़ दिखाने वालों के जुमलों का भाँडा फूट गया है और विकास दर में लगातार गिरावट जारी है। पिछली तिमाही में विकास दर 5 प्रतिशत हो गयी है और कई प्रमुख अर्थशास्त्रियों का कहना है कि विकास दर के ये आँकड़े भी कुशलतापूर्वक तोड़े-मरोड़े गये हैं और असलियत में विकास दर 2-2.5 प्रतिशत ही है। अगस्त महीने में देश के आठ बुनियादी सेक्टर कोयला, कच्चा तेल, प्राकृतिक गैस, रिफ़ाइनरी, उर्वरक, सीमेंट, बिजली और इस्पात का उत्पादन 45 महीने में सबसे निचले स्तर पर रहा। भारत भुखमरी के सूचकांक में 2014 में 55वें स्थान पर था जहाँ से लुढ़कते हुए अब 103वें स्थान पर पहुँच चुका है। संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास सम्मेलन (अंकटाड) की रिपोर्ट के मुताबिक़ 2020 भारी मन्दी का साल होगा। जब मेहनतकश वर्गों का अभी ये हाल है तो सोचा जा सकता है कि आने वाले सालों में क्या हश्र होगा। अगर हम ऐसे ही टुकड़े-टुकड़े में बँटे रहे और ज़िन्दगी के बुनियादी मुद्दों को भूलकर हुक्मरानों के खड़े किये झूठे मुद्दों पर एक-दूसरे से लड़ते रहे तो न यह मुल्क़ किसी के रहने लायक बचेगा और न ही यह धरती।

पूँजीवादी युद्ध और युद्धोन्माद के विरुद्ध बोल्शेविकों की नीति और सरकारी दमन

प्रसिद्ध पुस्तक **'ज़ार की दूमा में बोल्शेविकों का काम'** के कुछ हिस्सों की इस श्रृंखला में आठवीं कड़ी प्रस्तुत है। दूमा रूस की संसद को कहते थे। एक साधारण मज़दूर से दूमा में बोल्शेविक पार्टी के सदस्य बने **ए. बादायेव** द्वारा क़रीब 100 साल पहले लिखी इस किताब से आज भी बहुत–सी चीज़ें सीखी जा सकती हैं। बोल्शेविकों ने अपनी बात लोगों तक पहुँचाने और पूँजीवादी लोकतन्त्र की असलियत का भण्डाफोड़ करने के लिए संसद के मंच का किस तरह से इस्तेमाल किया इसे लेखक ने अपने अनुभवों के ज़रिए बख़ूबी दिखाया है। इस बार हम जो अंश प्रस्तुत कर रहे हैं उसमें हम देख सकते हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के पहले जब तमाम देशों के पूँजीपति दुनिया की लूट में हिस्से की बन्दरबाँट के लिए युद्ध करने पर उतावले हो रहे थे और पूँजीवादी सरकारें अपने देशों में राष्ट्रवादी जुनून और युद्धोन्माद भड़का रही थीं ताकि अलग-अलग देशों के मज़दूरों को एक-दूसरे की जान का दुश्मन बनाया जा सके, तब बोल्शेविक पार्टी ने दृढ़ता से युद्ध-विरोधी रुख अख़्तियार किया था और निरंकुश ज़ारशाही सरकार के दमन का सामना करते हुए क्रान्ति की तैयारियों को आगे बढ़ाया था। इस प्रसंग को पढ़ते हुए आज हमारे देश पर ध्यान चले जाना स्वाभाविक है जब सत्ता में बैठे फ़ासिस्ट युद्ध का पागलपन पूरे देश में फैला देना चाहते हैं ताकि मेहनकतश लोगों की असली समस्याओं से ध्यान हटाया जा सके। यह पूरी पुस्तक आज भी मज़दूर आन्दोलन में काम कर रहे लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। इसे पढ़ते हुए पाठकों को लगेगा मानो इसमें जिन स्थितियों का वर्णन किया गया है वे हज़ारों मील दूर रूस में नहीं बल्कि हमारे आसपास की ही हैं। 'मज़दूर बिगुल' के लिए इस श्रृंखला को **सत्यम** ने तैयार किया है।

दूमा धड़े की गिरफ़्तारी

धड़े ने पेत्रोवस्की और मुझे रोज़्यांको के साथ समझौता वार्ता करने की ज़िम्मेदारी दी। हमने अपनी ग़ैर-क़ानूनी नज़रबन्दी और तलाशी से सम्बन्धित सभी तथ्यों को उसके सामने रखा और उससे दोषी व्यक्तियों पर मुक़दमा चलाने के लिए उचित क़दम उठाने की माँग की।

हमने उसे हम पाँचों के दस्तख़त वाला लिखित विरोध-पत्र सौंपा। उसने वादा किया कि उससे जो कुछ भी बन पड़ेगा वह करेगा, मगर उसने असल में जो किया और उसके जो नतीजे सामने आये, उन्हें आप आगे की चर्चा में देखेंगे।

जब हम दूमा से बाहर आये तो हमने पाया कि जासूस सुबह की तुलना में ज़्यादा संख्या में थे और खुल्लमखुल्ला घूम रहे थे – वे हर मोड़ और नुक्कड़ पर दिख रहे थे और उन्होंने हमें एक बंद घेरे में चारों तरफ़ से घेर लिया। हम पर बहुत क़रीब से नज़र रखने के बावजूद, इससे पहले कभी भी पुलिस-एजेण्टों का बर्ताव इतना गुस्ताख़ीभरा नहीं था। वे ख़ून का स्वाद चख चुके जंगली जानवरों की तरह उस पल के इन्तज़ार में हमारे चारों ओरघेरा बनाते रहे, जब उन्हें अपने शिकार पर झपटने को कहा जायेगा। गुप्त पुलिस दो सालों से उस पल का इन्तज़ार कर रही थी और वे अब अपनी जीत की ख़ुशियाँ मना रहे थे। जीत की यह ख़ुशी हर जासूस, हर पुलिस एजेण्ट के चेहरे पर साफ़ झलक रही थी।

गिरफ़्तारी

हमारे चारों ओर पुलिस का घेरा धीरे-धीरे और तंग होता जा रहा था और जल्द ही हमें निगल जाने वाला था।

पुलिस इस तरह हम पर निगरानी रख रही थी, जैसेकि उन्हें डर हो कि आख़िरी घड़ी में हम कहीं भाग न जायें। हालाँकि निगरानी की वजह से हम मज़दूर संगठनों से सम्पर्क या विरोध प्रदर्शन संगठित नहीं कर पा रहे थे। हम बस हमारे दस्तावेज़ों और काग़ज़ातों की जाँच और पुनःजाँच ही कर सकते थे, ताकि पुलिस के चंगुल में फँसाने वाला कोई भी दस्तावेज़ उनके हाथ न लग जाये।

कई दिनों की चिंता और परेशानी के बाद मैं बिस्तर पर लेटा हुआ था और बस आँख लगी ही थी कि क़रीब आधी रात में घंटी बजी और पुलिस मेरे दरवाज़े पर प्रकट हो गयी। मेरे बिस्तर के पास खड़े एक पुलिस अफ़सर ने कहा "मिस्टर बादायेव, मेरे पास आपकी गिरफ़्तारी का वारण्ट है।"

लम्बे समय से जिस घड़ी की उम्मीद थी, वह आ गयी। मैंने कपड़े पहने, कुछ ज़रूरी चीज़ें लीं और अपने परिवार को अलविदा कह दिया। पूरा घर पुलिस के लोगों से भरा हुआ था। मैं नीचे गया और पुलिस के साथ बाहर अँधेरे रास्ते पर चल पड़ा, जो मुझे श्पालेरनाया स्ट्रीट पर स्थित नज़रबन्दी वाली जेल में ले गयी। मेरी तलाशी ग़ौर से ली गयी और मुझे एकान्त कारावास में रखा गया। वहाँ मुझे पता चला कि धड़े के दूसरे सभी सदस्यों को भी उसी रात, 5-6 नवम्बर को गिरफ़्तार कर लिया गया था।

आख़िरकार ज़ार की सरकार ने हमारे बोल्शेविक धड़े को कुचल दिया। क़ानूनी कार्रवाई से बोल्शेविक नुमाइन्दों की संसदीय सुरक्षा का सवाल, मज़दूर वर्ग पर होने वाले दूसरे हमलों की तरह ही, शक्ति संतुलन से तय हुआ था, जिसका पलड़ा उस समय सरकार की तरफ़ झुका हुआ लग रहा था।

मकलाकोव निकोलस द्वितीय को रिपोर्ट करता है

आंतरिक मामलों का मंत्री, मकलाकोव ज़ार के निरंकुश शासन के सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी समर्थकों में से एक था। उसने ओज़ियोर्की में पुलिस की करतूतों के नतीजों के बारे में फ़ौरन निकोलस द्वितीय को रिपोर्ट कर डाला। 5 नवम्बर को "सबसे नम्र" रिपोर्ट हमारी गिरफ़्तारी के पहले लिखी गयी और ज़ाहिरा तौर पर आवश्यक अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी गयी थी। इस रिपोर्ट में मकलाकोव ने लिखा :

रूस की सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी रूसी साम्राज्य में मौजूदा शासन को उखाड़ फेंकने और एक गणराज्य की स्थापना करने के मक़सद से मौजूद है। युद्ध की शुरूआत से ही यह इसकी जल्द से जल्द समाप्ति के लिए प्रचार कर रही है। और, इसकी ज़रूरत के तौर पर ये कारण बता रही है कि जीत होने पर निरंकुश शासन के मज़बूत होने का ख़तरा होगा और इसके परिणामस्वरूप पार्टी के कार्यभारों को व्यवहार में उतारने का काम टल जायेगा।

चौथी स्टेट दूमा के सदस्य, जो सामाजिक-जनवादी धड़े से सम्बन्ध रखते हैं, इन विचारों के प्रचार में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं और यह धड़ा पार्टी की आपराधिक गतिविधियों का निर्देशन और मार्गदर्शन करता है। इन सामाजिक-जनवादी नुमाइन्दों के विध्वंसक प्रभाव का सबसे स्पष्ट उदाहरण वह विशाल हड़ताल और सड़कों पर छायी अव्यवस्था थी, जिसे उन्होंने पिछले साल अन्जाम दिया था। दुर्भाग्यवश उनके काम का सबूत पेश करना नामुमकिन रहा है जिससे कि उन पर मुक़दमा चलाया जा सके।

आख़िरकार, क्रान्तिकारी संगठनों पर लगातार नज़र रखने वाली जासूसी सेवा ने किसी तरह से जानकारी प्राप्त की है कि सामाजिक-जनवादी नुमाइन्दों ने युद्ध विरोधी गतिविधि और रूस में राजशाही शासन के तख़्तापलट का कार्यक्रम तैयार करने के मक़सद से एक सम्मेलन करने का प्रस्ताव रखा है, जिसमें प्रमुख सामाजिक-जनवादियों भाग लेंगे।

4 नवम्बर को, राजधानी से बारह वर्स्ट (1 वर्स्ट = 1.0668 किलोमीटर) की दूरी पर सेण्ट पीटर्सबर्ग ज़िले में एक निजी मकान में बैठक करते हुए चौथी स्टेट दूमा के सामाजिक-जनवादी धड़े के निम्नलिखित सदस्यों – पेत्रोवस्की, बादायेव, मुरानोव, शागोव, सामोयलोव – और साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों से आये हुए पार्टी के छह अन्य प्रतिनिधियों को रंगे हाथों पकड़ लिया। जब पुलिस ने उनसे बैठक के मक़सद के बारे में पूछताछ की, तो उन्होंने जवाब दिया कि वे यह उनके मेज़बानों की शादी की आठवीं सालगिरह का जश्न मनाने के लिए कर रहे थे। मगर महिला मेज़बान के पति के वहाँ पहुँचने में कुछ समय देर हो जाने के कारण यह बात ग़लत साबित हो गयी।

भागीदारों की तलाशी से निम्नलिखित सामग्री मिली : एक विदेशी क्रान्तिकारी अख़बार, सोशल-डेमोक्रेट की कई प्रतियां, युद्ध के सवालों से सम्बन्धित बैठक का एजेण्डा, बत्तीस क्रान्तिकारी पर्चे, पार्टी के नोट और पत्राचार; और इसके अलावा, स्टेट दूमा के एक सदस्य, बादायेव के पास से बरामद हुई छात्रों को क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने का आह्वान करती हुई आपराधिक अपील की पाण्डुलिपि, और एक अलग नाम से पासपोर्ट।

पूरे विवरण की रिपोर्ट तुरन्त न्यायिक अधिकारियों को कर दी गयी, जिन्होंने स्टेट दूमा के सदस्यों समेत इस आपराधिक बैठक में भाग लेने वाले सभी लोगों पर अभियोग चलाने के लिए प्रारम्भिक जाँच गठित कर दी है।

मैं अपने राजशाही महामहिम के समक्ष यह रिपोर्ट प्रस्तुत करना अपना विनम्र कर्तव्य मानता हूँ।

– आंतरिक मामलों का मंत्री, मकलाकोव।

यह स्वीकार करना ही होगा कि मकलाकोव ने अपनी बहुत कुशल गुप्त पुलिस की सहायता से बोल्शेविक धड़े की गतिविधि का काफ़ी हद तक सही वर्णन किया। उसने झुँझलाते हुए रिपोर्ट किया है कि धड़े ने एक लम्बे समय तक सख़्त गोपनीयता बनाये रखी और किसी भी ऐसे तथ्य का पता नहीं चलने दिया जिसके आधार पर पुलिस कार्रवाई कर सकती, और फिर वह उल्लास के साथ बताता है कि कैसे आख़िरकार नुमाइन्दे पकड़े गये थे।

ज़ारशाही सरकार ने झूठा मुक़दमा चलाया

ज़ार निकोलस के आशीर्वाद से सरकार ने मुक़दमे की शुरुआत कर दी, जो कम से कम "कठिन परिश्रम" की सज़ा सुनाने वाला था। युद्ध के शुरुआती महीनों के दौरान देश में फैले और लगातार बढ़ते हुए अंधराष्ट्रीयतावादी उन्माद ने जनमत की तैयारी को और अधिक आसान बना दिया। Pravitelstvenny Viestnik (सरकारी संदेशवाहक) अख़बार में छपी पहली सार्वजनिक घोषणा में इस तरह की बातें कही गयी जिससे लोगों के बीच यह धारणा बनायी जा सके कि "रूस की सैन्य शक्ति" के ख़िलाफ़ एक ज़बर्दस्त साज़िश का पता लगाया जा चुका है। घोषणा में कहा गया था कि :

युद्ध की शुरुआत से ही पितृभूमि की अखण्डता को बनाये रखने की आवश्यकता के प्रति जागरूक रूसी लोगों ने युद्धकाल की गतिविधियों में सरकार का उत्साह के साथ समर्थन किया है। हालाँकि, सामाजिक-जनवादी संगठनों के सदस्यों ने एक बिल्कुल अलग रवैया अपनाया और भूमिगत गतिविधि और प्रचार द्वारा रूस की सैन्य शक्ति को कमज़ोर करने के प्रयास किये। अक्टूबर में सरकार को पता चला कि वर्तमान शासन के ख़िलाफ़ निर्देशित उपायों और अपने राष्ट्रद्रोही समाजवादी कार्यों को अन्जाम देने के बारे में चर्चा करने के लिए सामाजिक-जनवादी संगठनों के प्रतिनिधियों का एक गुप्त सम्मेलन आयोजित किया जाना था।

इसके बाद ओज़ियोर्की में तलाशी का विवरण दिया गया था : "चूंकि बैठक का मक़सद राष्ट्रद्रोही होने के बारे में कोई संदेह नहीं था, इसलिए वहाँ पकड़े गये लोगों को हिरासत में ले लिया गया, मगर स्टेट दूमा के सदस्यों को रिहा कर दिया गया।"

इस तथ्य के बावजूद कि हमारे "पाँच" पहले ही एकान्त कारावास में क़ैद कर दिये गये थे, *सरकारी संदेशवाहक* ने सावधानी से अपने पाठकों को सूचित किया कि जाँच से जुड़े मजिस्ट्रेटों ने फ़ैसला किया है कि सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी लोगों को "हिरासत में लिया जाये"।

सँभलकर की गयी यह घोषणा यह टटोलने के लिए थी कि जनता की प्रतिक्रिया क्या होगी। इशारा कर दिया गया था।

प्रतिक्रियावादी प्रेस ने इसका निर्देश पाकर तुरन्त हमारे धड़े पर उग्र हमला शुरू कर दिया। *रसकोय ज़नामया* की भाषा नमूना थी : "हमें अपने शत्रुओं के साथ औपचारिकता से पेश नहीं आना चाहिए; देश के भीतर शान्ति बहाल करने के लिए फाँसी ही एकमात्र साधन है।" इस अपील को दूसरी सभी रक्त-पिपासु प्रतिक्रियावादी प्रेसों का समर्थन प्राप्त था; उदारवादी अख़बार चतुराई के साथ बिल्कुल चुप्पी साधे रहे, और जहाँ तक मज़दूरों के अख़बारों की बात है तो उस समय उनका कोई अस्तित्व ही नहीं था।

ज़मीन पूरी तरह तैयार कर लिए जाने के बाद, सरकार ने 15 नवम्बर को धड़े की गिरफ़्तारी की घोषणा कर दी। दूसरी सरकारी घोषणा में कहा गया :

पेत्रोग्राद के पास आयोजित सम्मेलन से सम्बन्धित प्रारम्भिक जाँच के दौरान, जिसमें दूमा के कुछ सदस्यों और रूस के विभिन्न भागों से आये लोगों ने भाग लिया था, यह पाया गया कि सम्मेलन में एक प्रस्ताव पर चर्चा की जा रही थी, जिसमें कहा गया था कि "ज़ार की निरंकुशता और उसकी सेना की हार सबसे कम बुरी बात होगी" और जिसमें यह नारा दिया गया "सैनिकों के बीच जितना व्यापक रूप से सम्भव हो सके, समाजवादी क्रान्ति के लिए प्रचार जारी रखना है" और "सेना में ग़ैर-क़ानूनी गुट संगठित करने हैं"। सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को गिरफ़्तार कर लिया गया है।

प्रतिनिधियों की गिरफ़्तारी पर दूमा का रवैया

इसने ख़ुद दूमा पर क्या प्रभाव डाला? जैसाकि मैंने उल्लेख किया है, हमारी घोषणा प्राप्त करने के बाद रोज़्यांको ने वादा किया कि "उससे जो बन पड़ेगा, वह करेगा"। अन्य ग्रुपों से जुड़े कई नुमाइन्दों ने विरोध करने की ज़रूरत को सही समझा, मगर उनका विरोध पूरी तरह से कपटपूर्ण था। असल में, दूमा का बहुमत पूरी तरह से सरकार से सहमत था। उनके विरोध करने के निर्णय के पीछे उनका यह डर काम कर रहा था कि कहीं इस नये सरकारी उकसावे का जवाब मज़दूर एक और क्रान्तिकारी विस्फोट के रूप में न दे दें।

चूंकि इस समय दूमा नहीं चल रही थी, इसलिए विरोध सरकार से दरियाफ़्त का आम रूप नहीं ले सका। इसलिए, च्खीड्ज़े की पहल पर, जिसका साथ बाद में ट्रूदोविक्स के केरेंस्की, प्रोग्रेसिव्स के ईफ्रेमोव और कैडेट्स के मिल्यूंकोव ने भी दिया, बीमार और घायलों की सहायता के

(पेज 14 पर जारी)

पूँजीवादी युद्ध और युद्धोन्माद के विरुद्ध बोल्शेविकों की नीति और सरकारी दमन

(पेज 13 से आगे)

लिए दूमा समिति की नियमित बैठक में सवाल उठाया गया, जो रोज़ाना राष्ट्रपति के कमरे में होती थी।

6 नवम्बर की सुबह की बात है, दूमा को अभी तक धड़े की गिरफ़्तारी की जानकारी नहीं थी, और इसलिए समिति ने केवल ओज़ियोर्की में हमारी तलाशी और नज़रबन्दी के सवाल पर चर्चा की। समिति में भाग लेने वाले नुमाइन्दों ने देश में क्रान्तिकारी विस्फोट के स्पष्ट भय का ख़ुलासा किया। अक्टूबरवादियों का रवैया वैसा ही था, जैसीकि उम्मीद थी। गोदनियेव, ओपोचिनीन और लूत्ज़ ने पुलिस की कार्रवाई के ख़िलाफ़ विरोध की आवश्यकता की वकालत की और घोषणा की कि मज़दूरों के धड़े पर हमले से जनता के बीच अशान्ति फैलेगी और सेना की पिछली क़तारों में अव्यवस्था पैदा होगी। उन्होंने इन विशुद्ध देशभक्तिपूर्ण कारणों से सरकार की उकसावे वाली कार्रवाई की निंदा की।

चर्चा का परिणाम यह हुआ कि रोज़्यांको ने मंत्रिपरिषद के अध्यक्ष गोरमीकिन को विरोध पत्र भेजा। पत्र में इस्तेमाल किये गये शब्दों से दूमा में बहुमत की अवस्थिति के झूठ की बू आ रही थी। हालाँकि उसने हमें गिरफ़्तार किये जाने के लगभग एक महीने बाद 30 नवम्बर को पत्र भेजा, रोज़्यांको ने हमारी गिरफ़्तारी के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा, और ख़ुद को ओज़ियोर्की की घटनाओं के विषय में हमारी घोषणा को ही उस तक पहुँचाने तक सीमित रखा।

गोरमीकिन को सम्बोधित पत्र में, रोज़्यांको ने दूमा के संविधान के अनुच्छेद 15 के उल्लंघन का उल्लेख करते हुए कहा : "अधिकारियों द्वारा इस तरह की कार्रवाई बर्दाश्त नहीं की जा सकती है, इसलिए भी क्योंकि क़ानून की यह उपेक्षा और प्रशासनिक अधिकारियों की ओर से बरती गयी लापरवाही तथा ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व्यवहार शान्तिपूर्ण आबादी के बीच असन्तोष के बीज बो रहा है। और, ऐसे समय में उत्तेजित कर रहा है, जब हम एक कठिन दौर से गुज़र रहे हैं, जबकि जनता पहले से ही विश्वयुद्ध की कठिन परिस्थितियों से आन्दोलित है।" लेकिन रोज़्यांको के निष्कर्ष क्या थे? क्या उसने माँग की थी कि हमारे धड़े पर अत्याचार करना बंद किया जाये? बिल्कुल नहीं। उसने निम्नलिखित शब्दों के साथ अपने पत्र का अंत किया : "मैं ख़ुद को उम्मीद दिलाता हूँ कि हमारे महामहिम भविष्य में पुलिस की ग़ैर-क़ानूनी गतिविधियों से स्टेट दूमा के सदस्यों की रक्षा करने के लिए आवश्यक क़दम उठायेंगे।" इस तरह पूरा विरोध हमारे बोल्शेविक धड़े की किसी भी सुरक्षा के बारे में एक शब्द भी कहे बिना, सिर्फ़ एक औपचारिक घोषणा था और एक अनुरोध था कि यह अपराध दोहराया नहीं जायेगा।*

* यह पत्र आंतरिक मामलों के मंत्री, मकलाकोव को उसके विचारार्थ भेजा गया था। पुलिस विभाग के काग़ज़ात के बीच संरक्षित किये गये इस पत्र पर मकलाकोव की टिप्पणियाँ हैं जिससे ज़ार के इस प्रथम पुलिसकर्मी का चरित्र सामने आ जाता है। रोज़्यांको के पत्र ने मकलाकोव को नाराज़ कर दिया; एक नोट "फ़ाइल" के बाद उसने लिखा : "मैं इस सुझाव को स्वीकार नहीं कर सकता कि स्टेट दूमा के पाँच सदस्यों को अपराधी क़रार देने के पीछे पुलिस की कार्रवाई 'लापरवाही' या 'ग़ैर-ज़िम्मेदारी' वाली है। यह दूमा के सभापति के लिए अप्रिय साबित हो सकता है, मगर तथ्य यही बतलाते हैं। यह ऐसी कार्रवाई नहीं है, जिसे 'असहिष्णु' कहा जाये, बल्कि यह तथ्य है कि राष्ट्र के ख़िलाफ़ गम्भीर अपराधों को 'संसदीय प्रतिरक्षा' की आड़ में अन्जाम दिया जा सकता है। रूसी राज्य की अखण्डता किसी भी संसदीय प्रतिरक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है और पुलिस हमेशा उन दूमा सदस्यों की जाँच करेगी, जो क़ानून तोड़ने की कोशिश करते हैं। क्रान्ति के ख़िलाफ़ लड़ने वाले प्रशासनिक अधिकारी लोगों के बीच असन्तोष के बीज नहीं बो रहे हैं, बल्कि ऐसा वे लोग कर रहे हैं, जिनके पास इस तरह के नृशंस व्यवहार के सम्बन्ध में अधिकारियों की लापरवाही को लेकर चिल्लाने के अलावा कोई ढंग का काम नहीं है। अब समय आ गया है कि इन आदतों को त्याग दिया जाये। क्रोध के झूठे मनोभाव बहुत ज़्यादा सनकी और इस सन्दर्भ में अनुचित हैं। मैं फिर से पुलिस बल के उन सदस्यों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने पता लगाया और दूमा के सदस्यों को गिरफ़्तार कर लिया।"

जब दूमा एक लम्बे अन्तराल के बाद जनवरी 1915 में फिर से शुरू हुई तो बहुमत ने हमारी गिरफ़्तारी के बारे में दरियाफ़्त करने की इजाज़त नहीं दी। चूँकि कैडेट्स ने इन्कार कर दिया, आवश्यक संख्या में दस्तख़त जुटाना असम्भव था। जब चख़ीद्ज़े और केरेंस्की ने बजट पर बहस के दौरान अपने भाषणों का बड़ा हिस्सा बोल्शेविक धड़े की नियति को समर्पित किया, दूमा के सभापति ने प्रेस को उन्हें छापने की अनुमति नहीं दी।

स्वाभाविक रूप से, ब्लैक हण्ड्रेड दूमा ने पूरी तरह से रोमानोव सरकार की कार्रवाई का समर्थन किया। हमारे धड़े की गिरफ़्तारी ने सभी क्रान्तिकारी संगठनों की पराजय को मुकम्मल किया और यह स्थिति स्टेट दूमा में प्रतिनिधित्व किये जाने वाले हितों की इच्छाओं से पूरी तरह मेल खाती थी। जब सरकार पुलिस और गुप्त सेवा कर्मियों को ईनाम बाँट रही थी, तो घरेलू मोर्चे के नायक, रूसी उदारवाद के फूल, ज़ार की सरकार के पैरों में नाक रगड़ रहे थे।

सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी की घोषणा

लेकिन विरोधी ख़ेमे में क्या हुआ? कारख़ानों, कार्यस्थलों और खदानों में? बोल्शेविक नुमाइन्दों की गिरफ़्तारी की ख़बरों से जनता में उत्तेजना फैल गयी। हम देख चुके हैं कि अक्टूबरवादियों, सरकार के उन तुच्छ सहारों, तक ने इस तथ्य को समझ लिया था कि बोल्शेविक धड़े के विनाश से रूसी सर्वहारा पर निश्चित रूप से एक शक्तिशाली प्रभाव पड़ेगा। वे ग़लत नहीं थे; फ़रवरी क्रान्ति के समय तक क्रान्तिकारी आन्दोलन की मूल माँगों के साथ-साथ बोल्शेविक नुमाइन्दों की रिहाई की माँग भी आगे बढ़ायी जाने लगी। मगर गिरफ़्तारी के समय मज़दूर वर्ग के पास कोई व्यापक आन्दोलन खड़ा करने के लिए पर्याप्त शक्ति नहीं थी; युद्ध के आतंक ने देश की गर्दन दबोच रखी थी और सभी क्रान्तिकारी गतिविधियों का नतीजा कोर्ट-मार्शल द्वारा मृत्यु दण्ड या लम्बी अवधि क़ैद बामशक्कत के रूप में सामने आ रहा था। धड़े की गिरफ़्तारी का मतलब था कि रूस में मुख्य पार्टी केन्द्र नष्ट कर दिया गया था। पार्टी कार्य के सभी धागे दूमा के "पाँच" प्रतिनिधियों पर आकर मिलते थे, जो अब टूट चुके थे।

गुप्त पुलिस ने जब नुमाइन्दों की गिरफ़्तारी के लिए तैयारी की तो उसने मज़दूरों द्वारा धड़े की रक्षा के लिए उठाये जाने वाले किसी भी कदम के खिलाफ बचाव के कई सारे उपाय कर रखे थे। जासूसी के काम को मज़दूर वर्ग के क्षेत्रों में दोगुना कर दिया गया और पार्टी के कई सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी, इन सब कुछ के बावजूद, सेण्ट पीटर्सबर्ग समिति गिरफ़्तारी पर एक घोषणा जारी करने में कामयाब रही। 11 नवम्बर को हेक्टोग्राफ से छापकर वितरित की गयी घोषणा के द्वारा मज़दूरों से हड़ताल करने और विरोध सभाएँ करने का आह्वान किया गया :

साथियो! 5 नवम्बर की रात को, ज़ार की नीच सरकार ने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर धड़े के सदस्यों को जेल में डाल दिया। यह वही जल्लादों की सरकार थी जो पहले ही लोकतंत्र के सेनानियों के खून से हाथ लाल कर चुकी थी और, जिसने दूसरी दूमा के मज़दूरों के निर्वासित प्रतिनिधियों को यातनाएँ दीं और सर्वहारा के हज़ारों सपूतों को क़ैद किया था।

निरंकुश सरकार ने 3 करोड़ मज़दूरों के दूमा प्रतिनिधियों के साथ शर्मनाक सनक भरा व्यवहार किया है। ज़ार और उसके लोगों की एकता के बारे में की जाने वाली बातों का झूठ और पाखण्ड अब उजागर हो चुका है। जनता के साथ किये जा रहे छल और भ्रष्टाचार अब और नहीं चल सकते.... ज़ार की सरकार अपने चरम पर पहुँच चुकी है.... मज़दूर वर्ग और लोकतंत्र की सभी ताक़तों के सामने अब संविधान सभा बुलाने के लिए, लोगों के वास्तविक प्रतिनिधित्व के लिए संघर्ष करने की ज़रूरत बिल्कुल सामने आ खड़ी हुई है।

युद्ध और मार्शल लॉ की स्थिति ने सरकार को सर्वहारा के हितों की बहादुरी से रक्षा करने वाले मज़दूरों के नुमाइन्दों पर हमले जारी रखने में सक्षम बना दिया है। सरकार बंदूकों और राइफ़लों की आवाज़ से क्रान्तिकारी आन्दोलन को ख़ून की नदियों में डुबा देने की कोशिश कर रही है, और मज़दूरों और किसानों को मरने के लिए युद्ध में धकेलते हुए यह उनके सपनों का भी क़त्ल कर देने के सपने देख रही है।

सभी स्लाव लोगों की मुक्ति के बारे में खोखली घोषणाएँ करते हुए ज़ार की सरकार मज़दूर वर्ग के सभी संगठनों को तोड़ रही है, मज़दूरों की प्रेस को नष्ट कर रही है और बेहतरीन सर्वहारा सेनानियों को क़ैद कर रही है।

लेकिन यह मज़दूर वर्ग के दुश्मन के लिए काफी नहीं है। मज़दूरों के नुमाइन्दों के ख़िलाफ़ हमला करने का फ़ैसला इसलिए लिया गया क्योंकि वे सरकार की उत्पीड़न, हिंसा और लोहे की बेड़ियों वाली नीति के ख़िलाफ़ बहादुरी से लड़ रहे थे। ज़ारशाही लुटेरों ने मज़दूर वर्ग के चुने हुए प्रतिनिधियों से कहा: "तुम लोगों की जगह जेल में ही है"।

पूरे मज़दूर वर्ग को जेल में डाल दिया गया है। लुटेरों और शोषकों के एक गिरोह ने, तबाही लाने वालों के एक गिरोह ने रूस के पूरे मज़दूर वर्ग को तबाही की ओर धकेलने की जुर्रत की है। मज़दूर वर्ग के जीने और मरने की चुनौती है। मगर मार्शल लॉ के कठोर दमन से भी मज़दूरों को अपनी विरोध की आवाज़ बुलन्द करने से नहीं रोका जा सकेगा। "जल्लाद और हत्यारे मुर्दाबाद" का नारा रूस के लाखों मज़दूरों द्वारा लगाया जायेगा, जो अपने नुमाइन्दों की रक्षा के लिए तैयार हैं।

साथियो! रूस की सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की सेण्ट पीटर्सबर्ग समिति सेण्ट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों से ज़ार-ज़मीन्दार गिरोह की करतूतों के ख़िलाफ़ सभाएँ और एक दिन की हड़तालें करने का आह्वान करती है।

ज़ारशाही मुर्दाबाद! लोकतांत्रिक गणतंत्र ज़िन्दाबाद! रूस की सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी ज़िन्दाबाद! समाजवाद ज़िन्दाबाद!

11 नवम्बर, रूस की सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की सेण्ट पीटर्सबर्ग समिति।

उसी समय, सेण्ट पीटर्सबर्ग के सामाजिक-जनवादी छात्र संगठन ने निम्नलिखित घोषणा जारी की :

रूसी निरंकुशता अपनी असलियत के मुताबिक राष्ट्र के ख़िलाफ़ अपना काम जारी रखे हुए है। इसका नया कारनामा, सामाजिक-जनवादी दूमा धड़े की गिरफ़्तारी, तख्तापलट से कम नहीं है। जनप्रतिनिधियों के नाम पर जारी मज़ाक का अन्त हो चुका है। स्वेच्छाचारियों ने अपना काम कर दिया है और वास्तविक नंगे तथ्य अपने बदसूरत, सनक भरे रूप में लोकतंत्र के सामने आ खड़े हुए हैं।

मज़दूरों की कार्रवाई

अपनी घोषणा जारी करने हुए, सेण्ट पीटर्सबर्ग समिति ने मज़दूरों द्वारा किसी भी व्यापक कार्रवाई की सम्भावना पर भरोसा नहीं किया था। इसका उद्देश्य मज़दूरों को इस नये सरकारी अपराध की जानकारी देना और घटनाओं को इस तरह से समझाना था जिससे कि सरकार और पूँजीवादी प्रेस द्वारा देशभक्ति के नाम पर जारी प्रचार का मुकाबला किया जा सके। यह बताते हुए कि धड़े की गिरफ़्तारी पूरे रूसी मज़दूर वर्ग को कैद में रख देने के बराबर थी, हमारी पार्टी ने ज़ारशाही सरकार की चुनौती का सामना करने के लिए जनता को तैयार किया।

लेकिन अपील का तत्काल प्रभाव हुआ। कई कारखानों में मज़दूरों ने विरोध में एक दिन के हड़ताल का आह्वान किया और दूसरे कारखानों में उनके हड़ताल को पूरी तरह तैयार पुलिस बलों के हस्तक्षेप द्वारा रोक दिया गया।

इसलिए जब "न्यू लेस्नर" कारख़ानों में मज़दूर हड़ताल की कार्रवाई के सवाल पर चर्चा करने के लिए सुबह इकट्ठा हुए, तो एक बड़ी पुलिस टुकड़ी जो कारख़ाने में पहले ही ले आयी गयी थी, मज़दूरों पर झपट पड़ी और कई गिरफ़्तारियाँ की। दूसरे कारखानों में भी हड़तालों को इसी तरीके से रोका गया।

जिन जगहों पर हड़तालें हुई, वहाँ कठोर सज़ाएँ दी गयीं। जिन मज़दूरों को सबसे ख़तरनाक माना गया, उन्हें धर दबोचा गया और सेण्ट पीटर्सबर्ग के बाहर भेज दिया गया, जबकि दूसरों के लिए एक नयी सज़ा का ईजाद किया गया। जो मज़दूर रिजर्व में रखे गये थे, या जिनकी लामबन्दी सैन्य अधिकारियों के साथ समझौते के कारण देर से की जानी थी, उन्हें तुरन्त मोर्चे के सबसे आगे के स्थानों पर भेज दिया गया। पारवियेनेन कारख़ाने में हड़ताल पर गये 1,500 मज़दूरों में से दस को निर्वासित कर दिया गया और बीस से अधिक रिज़र्व में रखे मज़दूरों को युद्ध की खन्दकों में भेज दिया गया।

इन परिस्थितियों में हड़ताल अन्दोलन ज़्यादा आगे नहीं बढ़ सकता था, लेकिन इन हड़तालों ने भी यह दिखा दिया कि मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को पूरी तरह से दबाया नहीं जा सका था और देर-सबेर यह अपनी पूरी ताक़त के साथ फिर उभर आयेगा।

दूमा धड़े की गिरफ़्तारी पर लेनिन

हमारी पार्टी के काम के लिए ज़मीन तैयार थी लेकिन पार्टी के लिए काम कर पाना बहुत ही मुश्किल था। दूमा धड़े की गिरफ़्तारी ने हमारे संगठन के विनाश का काम पूरा कर दिया था। रूस से अलग-थलग और कटी हुई केंद्रीय समिति के सामने पूरे पार्टी संगठन को नये सिरे से खड़ा करने का काम आ गया। काफी चिन्तित होकर लेनिन ने स्टॉकहोम में शल्याप्निकोव को लिखा : "अगर यह सच है तो यह बड़े दुर्भाग्य की बात है", और उनसे पता लगाने के लिए अनुरोध किया कि दूमा धड़े की गिरफ़्तारी की पहली रिपोर्टें सही थीं या नहीं।

तीन दिन बाद, जब ख़बर की पुष्टि हो गई, लेनिन ने शल्याप्निकोव को लिखा : "यह भयानक है। ज़ाहिर है कि सरकार ने रूस के सामाजिक-जनवादी मज़दूरों के धड़े से प्रतिशोध लेने का ठान लिया है और कोई कसर नहीं उठा रखी। हमें सबसे बुरी स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए; जाली दस्तावेज़, बनावटी प्रमाण, झूठे सबूत, गुप्त मुक़दमे इत्यादि।" आगे लेनिन ने पार्टी के काम में आने वाली भारी कठिनाइयों की ओर इशारा किया, जो अब सौ गुना बढ़ गयी थीं : "हम अब भी अपना काम जारी रखेंगे। 'प्राव्दा' ने हज़ारों वर्ग-सचेत मज़दूरों को शिक्षित किया है, जिनके बीच से, सभी कठिनाइयों के बावजूद, नेताओं का एक नया समूह, एक नयी रूसी केन्द्रीय समिति, उभर कर सामने आयेगी...."

हमेशा की तरह लेनिन के शब्द मज़दूर वर्ग की ताक़त और क्रान्ति की जीत में गहरे विश्वास से प्रेरित थे। उन्होंने पार्टी के काम में बाधा डालने वाली कठिनाइयों को स्पष्ट रूप में देख लिया था, मगर इससे उनका वह असाधारण बल और ऊर्जा एक पल के लिए भी डिगा नहीं, जिसने क्रान्तिकारी संघर्ष की कठिन और सबसे मुश्किल घड़ी में भी उनका साथ नहीं छोड़ा।

तानाशाह : तीन कविताएँ

● कविता कृष्णपल्लवी

तानाशाह के मन की बात

तानाशाह जब लोगों से अपने मन की बात करता है
तो वह सब कुछ कहता है जो
उसके मन में कभी नहीं होता।
तब वह दरअसल अपने हृदय का सारा अन्धकार
सड़कों पर उड़ेल देना चाहता है,
उसे पूरे देश में फैला देना चाहता है।
तानाशाह का यह हृदय
दलाल स्ट्रीट के साँड के शरीर से निकाला गया है।
कुछ दिनों तक यह सजा हुआ रखा था
एण्टीलिया के एक भव्य ड्राइंग रूम में।
कभी यह सुशोभित हुआ करता था
वालमार्ट के शोरूम में।
*
तानाशाह अपना हृदय खोल रहा है और
पूरे देश में अँधेरा भरता जा रहा है,
गलियों से बहती ख़ून की धाराएँ
सड़कों पर आकर मिल रही हैं
और शहर डूबने के कगार पर हैं।
*
यह आम लोगों का ख़ून कभी व्यर्थ नहीं बहता।
इस ख़ून की बाढ़ में एक दिन
डूबकर मर जाना है तानाशाह को
अपने हृदय के सारे अन्धकार के साथ,
अपने ख़ून की सारी गन्दगी के साथ
और हर क़ीमत पर चिरकाल तक शासन करने के
अपने आततायी इरादों के साथ।

(7 अगस्त 2018)

तानाशाह जो करता है!

लाखों इन्सानों को हाँका लगाकर जंगल से खदेड़ने
और हज़ारों का मचान बाँधकर शिकार करने के बाद
तानाशाह कुछ आदिवासियों को राजधानी बुलाता है
और सींगों वाली टोपी और अंगरखा पहनकर
उनके साथ नाचता है
और नगाड़ा बजाता है।

बीस लाख लोगों को अनागरिक घोषित करके
तानाशाह उनके लिए
बड़े-बड़े कंसंट्रेशन कैम्प बनवाता है
और फिर घोषित करता है कि
जनता ही जनार्दन है।

एक विशाल प्रदेश को जेलखाना बनाने के बाद
तानाशाह बताता है कि
मनुष्य पैदा हुआ है मुक्त
और मुक्त होकर जीना ही
उसके जीवन की अन्तिम सार्थकता है।

लाखों बच्चों को अनाथ बनाने के बाद
तानाशाह कुछ बच्चों के साथ
पतंग उड़ाता है।

हज़ारों स्त्रियों को ज़ुल्म और वहशीपन का
शिकार बनाने के बाद तानाशाह अपने
महल के बारजे से कबूतर उड़ाता है,
सड़कों पर खून की नदियाँ बहाने के बाद
कवियों-कलावंतों को पुरस्कार और
सम्मान बाँटता है।

तानाशाह ऐसे चुनाव करवाता है
जिसमें हमेशा वही चुना जाता है,
ऐसी जाँचें करवाता है कि
अपराध का शिकार ही अपराधी
सिद्ध हो जाता है
ऐसे न्याय करवाता है कि वह तमाम
हत्यारों के साथ खुद
बेदाग़ बरी हो जाता है।
तानाशाह रोज़ सुबह संविधान का पन्ना
फाड़कर अपना पिछवाड़ा पोंछता है
और फिर बाहर निकलकर लोकतंत्र,
संविधान, न्याय और इस देश की जनता में
अपनी अटूट निष्ठा प्रकट करता है।

तानाशाह अपने हर जन्मदिन पर
लोगों की ज़िन्दगी से कुछ रंगों को
निकाल बाहर करता है
और फिर सुदूर जंगलों से बक्सों में भरकर लाई गई
रंग-बिरंगी तितलियों को राजधानी की
ज़हरीली हवा में आज़ाद करता है।

इस तरह तानाशाह सभी मानवीय, सुन्दर
और उदात्त क्रियाओं और चीजों को,
नागरिक जीवन की सभी स्वाभाविकताओं को,
सभी सहज-सामान्य लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को
सन्दिग्ध बना देता है।

सन्देह में जीते हुए लोग उम्मीदों,
सपनों और भविष्य पर भी
सन्देह करने लगते हैं
और जबतक वे ऐसा करते रहते हैं
उन्हें तानाशाह की सत्ता का अस्तित्व
असन्दिग्ध लगता रहता है।

तानाशाह और भीड़

तानाशाह के पास
अपने वफ़ादार वर्दीधारी सैनिक थे,
अपने चुने हुए जन-प्रतिनिधि थे,
अपने अमले-चाकर थे,
अफ़सर-मुलाज़िम-कारकुन थे,
अपनी न्यायपालिका थी,
अपने शिक्षा-संस्थान थे जहाँ
टैंक खड़े रहते थे और तानाशाही तले
जीने की शिक्षा दी जाती थी।

पर तानाशाह की सबसे बड़ी ताक़त
हिंसक भेड़ियों के झुण्ड जैसी वह भीड़ थी
जो तानाशाह के लोगों ने
बड़ी मेहनत से तैयार की थी।
इसमें समाज के अँधेरे तलछट के लोग थे
और सीलन भरे उजाले के पीले-बीमार
चेहरों वाले लोग थे
और जड़ों से उखड़े हुए सूखे-मुरझाये हुए लोग थे।
यह भीड़ तानाशाह के इशारे पर
किसीको बोटी-बोटी चबा सकती थी,
सड़कों पर उन्माद का उत्पात मचा सकती थी,
बस्तियों को खून का दलदल बना सकती थी।

सम्मोहित-सी वह भीड़
हमेशा तानाशाह के पीछे चलती थी
और तानाशाह के इशारे का इंतज़ार करती थी।
तानाशाह इतना आश्वस्त था कि
यह सोच भी नहीं पाता था कि
किसी भी सम्मोहन का जादू
कुछ समय बाद टूटने लगता है।

एक दिन अपने लाव-लश्कर के साथ
तानाशाह जब सड़क पर निकला
तो उसने देखा कि भीड़
जो उसके पीछे चला करती थी,
वह उसका पीछा कर रही है!

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

प्रधानमंत्री अमेरिका जाकर घोषणा कर रहे हैं कि 'भारत में सब चंगा सी!'

पर आम मेहनतकश जनता पर मन्दी की मार तेज़ होती जा रही है

– पराग वर्मा

मोदी सरकार और पूरा बिका हुआ पूँजीवादी मीडिया फ़र्ज़ी आँकड़ों और झूठे दावों का चाहे जितना धुआँ छोड़ ले, लगातार गहराते आर्थिक संकट को ढाँक-तोप कर रखना अब उनके लिए मुश्किल होता जा रहा है। एक तरफ़ रोज़ होते खुलासे उनके झूठ के ग़ुब्बारे को पंचर कर दे रहे हैं और दूसरी तरफ़ आम लोगों के जीवन पर बेरोज़गारी, महँगाई, क़दम-क़दम पर सरकारी और निजी कम्पनियों की बढ़ती लूट और डूबते पैसों की जो मार पड़ रही है वह उन्हें असलियत का अहसास करा रही है। इसी कड़वी सच्चाई से ध्यान भटकाने के लिए फ़र्ज़ी देशभक्ति के नगाड़े ख़ूब पीटे जा रहे हैं। हक़ीक़त यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था पूरे विश्व में चरमरा रही है और वैश्विक आर्थिक मन्दी के मौजूदा दौर ने दुनिया के लगभग सभी देशों को चपेट में ले लिया है। भारत में फ़ासिस्ट मोदी सरकार की कारगुज़ारियों ने इस संकट को और भी गम्भीर बना दिया है। 'मज़दूर बिगुल' में हम लगातार इस आर्थिक संकट के अलग-अलग पहलुओं और इसके कारणों पर लिखते रहे हैं। इस लेख में गहराते आर्थिक संकट की तीन बड़ी अभिव्यक्तियों की पड़ताल की गयी है।

रोज़गार का गहराता संकट

मोदी सरकार के पूरे कार्यकाल के दौरान नौकरियाँ पैदा होना तो दूर उनमें और कटौती होती रही। ख़ासकर, 2016 में नोटबन्दी के बाद बड़े पैमाने पर लोगों के रोज़गार छिन गये। मेक इन इंडिया, स्टार्ट अप इंडिया, पाँच ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था जैसे जुमले उड़ाये गये पर देशी-विदेशी कोई निवेश नहीं हो रहे हैं। न तो प्राइवेट सेक्टर रोज़गार पैदा कर पाया और ना ही सरकारी भर्तियाँ निकलीं। सरकारी नौकरियों के जो रिक्त पद भरने थे वो भी नहीं भरे गये। इसके विपरीत मन्दी के कारण करोड़ों रोज़गार छिन गये। वर्ष 2018 में भारत में 1.10 करोड़ लोगों ने नौकरियाँ गँवाई। ख़ुद सरकारी आँकड़े बताते हैं कि यह पिछले 45 सालों की सबसे ज्यादा बेरोज़गारी है।

मन्दी की मार का सबसे ज्यादा असर ऑटोमोबाइल सेक्टर में देखने को मिला। भारत में होने वाली मैन्युफ़ैक्चरिंग का 49 प्रतिशत ऑटोमोबाइल सेक्टर से आता है और इसी सेक्टर में इस साल की पहली तिमाही में गाड़ियों की बिक्री में 18.4 प्रतिशत की गिरावट हुई क्योंकि मौजूदा व्यवस्था में लोगों की ख़रीदने की क्षमता ही कम हो गयी है। कार, ट्रक और बाइक बनाने वाली लगभग सभी बड़ी कम्पनियों की बिक्री में गिरावट आयी जिसके कारण उन्हें अपने कारख़ानों के उत्पादन में कटौती करनी पड़ी। उत्पादन में कटौती का सीधा असर वहाँ काम करने वाले लाखों मज़दूरों पर हुआ। मारुति की फैक्ट्री से 3000 मज़दूरों को निकाल दिया गया। महिन्द्रा ने 15000 कर्मचारियों को बाहर कर दिया। निसान और रेनॉल्ट ने भी 1700 से ज्यादा कर्मचारियों को बाहर किया। नौकरियों से हुई छँटनी के ये आँकड़े केवल बड़ी कम्पनियों में काम करने वालों के हैं। बड़ी ऑटोमोबाइल कम्पनियों के लिए सामान बनाने वाली सैकड़ों वेंडर कम्पनियों के अस्थायी और ठेका मज़दूरों को भी लाखों की तादाद में नौकरी से हाथ धोने पड़े । बिक्री में कमी के कारण हीरो मोटो कॉर्प, मारुति सुजुकी, महिन्द्रा, टाटा और अशोक लेलैंड जैसी कम्पनियों ने कई-कई दिनों तक अपना उत्पादन बन्द कर किया जिससे दिहाड़ी पर काम करने वाले मज़दूरों की आमदनी एकदम शून्य हो गयी। कारों के सैकड़ों शोरूम भी बन्द हो गये जिनमें काम करने वाले लगभग 25,000 लोग बेरोज़गार हो गये।

विदेशी वित्तीय पूँजी को आसानी से भारत में प्रवेश देने के लिए सरकार ने आयात शुल्क और कॉरपोरेट टैक्स कम कर दिया, जिसका असर यह हुआ कि भारत में उत्पादन करने वाली कई फ़ैक्ट्रियाँ बन्द हो गयीं और बेरोज़गारी बढ़ गयी। सिंगल ब्राण्ड रिटेल में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश में और ढील देकर 30 प्रतिशत उत्पाद भारत में बने होने की शर्त को कमज़ोर कर दिया गया है। कॉण्ट्रैक्ट मैन्युफ़ैक्चरिंग और कोयले के खनन में भी विदेशी निवेश को खुली छूट दे दी गयी है। बड़ी विदेशी पूँजी के लिए रास्ते इतने साफ़ कर दिये गये हैं कि बहुत सी देशी कम्पनियों का बन्द होना और उनमें काम कर रहे लोगों का रोज़गार जाना तय है। टेक्सटाइल सेक्टर का भी बुरा हाल है। भारत से ही कच्चा माल लेने वाला बंगलादेश अब भारत से ज़्यादा टेक्सटाइल का निर्यात करता है और भारत के टेक्सटाइल उद्योग की हालत खस्ता है। लाखों की तादाद में टेक्सटाइल मज़दूरों का काम छूट गया है। मशीनरी पार्ट और इलेक्ट्रॉनिक उपभोक्ता सामग्री बनाने वाली छोटी कम्पनियों के पास भी ऑर्डर नहीं हैं और कभी कम उत्पादकता के बहाने तो कभी अनुशासन के बहाने इन कम्पनियों ने भी बहुत से युवाओं को सड़क पर बेरोज़गारों की भीड़ में धकेल दिया है।

रियल एस्टेट सेक्टर में भी एक-एक करके बड़ी-बड़ी भवन निर्माण कम्पनियों के नुक़सान की ख़बर है जिससे निर्माण मज़दूरों का बुरा हाल हैं। करीब तीन करोड़ लोगों को रोज़गार देने वाले इस सेक्टर में गतिविधियाँ लगभग ठप हो जाने से बहुत बड़े पैमाने पर लोग बेरोज़गार हुए हैं या उनकी मज़दूरी में कमी आयी है। तेज़ी से बिकने वाली उपभोक्ता वस्तुएँ जैसे बिस्कुट, साबुन, शैम्पू, डिटर्जेंट, अंडरवियर आदि की खरीद में गिरावट का सीधा मतलब है कि बेरोज़गारी की मार झेल रही आम मेहनतकश जनता के पास मूलभूत सामान खरीदने के भी पैसे नहीं हैं। क्रेडिट सुइस नामक वित्तीय कम्पनी के हिसाब से रोज़मर्रा के उत्पादों की बिक्री में कमी जो आज दिखाई दे रही हैं वो पिछले 15 सालों में सबसे बुरी स्थिति है। सरकारी नीतियों द्वारा बीएसएनएल और एमटीएनएल और अन्य सरकारी उपक्रमों और सार्वजनिक क्षेत्र की अन्य कम्पनियों को नुक़सान पहुँचाया गया और उनसे अत्यधिक डिविडेण्ड लेकर उनकी आर्थिक हालत कमज़ोर की गयी है। बीएसएनएल और एमटीएनएल को नुक़सान पहुँचाकर, अम्बानी की रिलायंस कम्पनी के जिओ टेलीकॉम को फ़ायदा पहुँचाया जा रहा है। इस नीति के चलते बीएसएनएल और एमटीएनएल के एक लाख पचासी हज़ार कर्मचारियों का भविष्य अँधेरे में है। वित्तीय क्षेत्र हो या फिर आईटी या इंजीनियरिंग का क्षेत्र, सभी में नौकरियाँ जाने का सिलसिला क़ायम है। रेलवे में निजीकरण के कारण तीन लाख से ज़्यादा नौकरियाँ चली जाने का अनुमान है। दूसरे सभी सरकारी उपक्रमों में कई सालों से भर्ती बन्द है। कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति के बाद भी नयी भर्तियाँ नहीं की जा रही हैं। लघु उद्योगों में तो आये दिन मज़दूरों को निकाला जा रहा है। आने वाले समय में पिछले साल के बेरोज़गारी के आँकड़े दोगुने हो जायें तो आश्चर्य नहीं, यह अलग बात है कि सरकार इस सच्चाई को आप तक पहुँचने नहीं देगी।

बैंकिंग का संकट

बैंकिंग संकट का एक मुख्य कारण बैंकों का पूँजीपतियों को कर्ज़ देना और फिर न चुका पाने की परिस्थिति में उसे एन.पी.ए (नॉन परफार्मिंग एसेट) घोषित करके माफ़ कर देना है। जब कॉरपोरेट घराने कर्ज़ नहीं चुकाते तो सरकार मध्यस्थता कर उन्हें माफ़ करवाती है। बाद में सरकार ख़ुद इन बैंकों को पैसे देकर बेलआउट भी करती है यानी उन्हें घाटे से बाहर निकालती है। 2014 में सरकारी बैंकों का जो एन.पी.ए 2.24 लाख करोड़ था वह अब 7.23 लाख करोड़ हो गया है, यानी पिछले पाँच सालों में तीन गुना बढ़ चुका हैं। बैंकों का कुल एन.पी.ए. दस लाख करोड़ से ज़्यादा का है। इसके अलावा पिछले 11 सालों में कॉरपोरेट कम्पनियों द्वारा की गयी धोखाधड़ी की संख्या में भी अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई है। नीरव मोदी और माल्या जैसे कई उद्योगपति बैंकों को चूना लगाकर भाग चुके हैं। 11 सालों में हुई इन धोखाधड़ियों के कारण बैंकों को कुल 2.05 लाख करोड़ रुपये का नुक़सान हुआ है। चौकीदार सरकार की निगरानी में केवल पिछले पाँच सालों में 1.74 लाख करोड़ रुपये के बैंक फ्रॉड हुए हैं।

वैश्विक रेटिंग एजेंसी मूडी का दावा है कि आने वाले समय में कॉरपोरेट डिफ़ॉल्ट और बढ़ेगा जिसके कारण बैंकों में पूँजी की कमी और बढ़ सकती है। हर बैंक में बढ़ रहे इन घाटों को देखते हुए सरकार ने छोटे बैंकों का बड़े-बड़े बैंकों के साथ विलय कर दिया है जिससे बैंकों की इस बदहाल स्थिति को कुछ समय के लिए टाला जा सके। हाल ही में आईएल एंड एफ़एस जैसी विशाल नॉन-बैंकिंग फ़ाइनेंस कम्पनी के डूबने की खबर से ये भी पता चलता है कि इनको तो बनाया ही इसलिए गया था जिससे जनता के खराबों रुपये इनके माध्यम से पूँजीपतियों तक पहुँचाये जा सकें। आईएल एंड एफ़एस इंफ्रास्ट्रक्चर को फाइनेंस करने वाली कम्पनी है जिसने बहुत सी इंफ्रास्ट्रक्चर कम्पनियों को क़र्ज़ दे रखा था। अब उस पर 91 हज़ार करोड़ रुपये का क़र्ज़ है जिसकी वह किश्त भी नहीं चुका पा रही है। आईएल एंड एफ़एस ने बहुत से सरकारी/गैरसरकारी बैंकों से कर्ज़ लिया हुआ है और साथ ही एलआईसी, पीएफ़ और पेंशन फण्ड के पैसों का भी उसमें निवेश है। कर्ज़ ना चुका सकने की सूरत में आईएल एंड एफ़एस दिवालिया घोषित होगा और इन सभी कम्पनियों का पैसा डूब जायेगा। एक और ख़बर के अनुसार इंडिया बुल्स प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी ने विभिन्न सरकारी और निजी बैंकों से हज़ारों करोड़ के क़र्ज़े लिये और इन्हें ऐसे पूँजीपतियों को दिया जिन्होंने वापस उसका कुछ हिस्सा इंडिया बुल्स में ही फिर निवेश कर दिया। इण्डिया बुल्स जैसी कम्पनियों ने कई मुखौटा कम्पनियाँ भी खोल रखी हैं जो केवल नाम की कम्पनियाँ हैं और उनका इस्तेमाल केवल पैसे को इधर से उधर करने के लिए किया जाता है। इस तरह की हेरा-फेरी करते हुए यह कम्पनी जानती थी कि ये कर्ज़े एन.पी.ए घोषित होकर माफ़ हो ही जायेंगे। सोने पर सुहागा यह कि इस कम्पनी के सारे कर्ता-धर्ता भाजपा से जुड़े हुए हैं। इस तरह केवल नॉन-बैंकिंग फ़ाइनेंस कम्पनियों के रास्ते से जनता की 3 लाख करोड़ रुपये की पूँजी, लुटेरे पूँजीपतियों के पास पहुँचकर डूब चुकी है।

अभी ताज़ा उदाहरण पंजाब एंड महाराष्ट्र सहकारी बैंक का है जिसने एचडीआईएल नामक इंफ्रास्ट्रक्चर कम्पनी को 6500 करोड़ का क़र्ज़ दिया जोकि बैंक के कुल दिये हुए क़र्ज़ का 73 प्रतिशत है। ये सब बैंक द्वारा 21000 फ़र्ज़ी अकाउंट बना के किया गया। पिछले साल इसी तरह के एक मामले में पंजाब नेशनल बैंक में 14000 करोड़ का डिफ़ॉल्ट हुआ था । इसके बाद भी सरकार पूँजीपतियों से पैसा वसूलने की जगह बैंक के उपभोक्ताओं का ही उत्पीड़न करने पर आमादा है। रिज़र्व बैंक ने निर्देश दिये हैं कि इस बैंक के उपभोक्ता 6 महीनों तक प्रतिमाह केवल अधिकतम 10000 तक की रकम निकाल सकते हैं। लोगों को उनके ही पैसे निकालने से रोक दिया गया है। अब तो यह बताने की ज़रूरत भी नहीं कि पीएमसी बैंक के सभी डायरेक्टर भारतीय जनता पार्टी से हैं। एक और बड़ी कम्पनी दीवान हाउज़िंग फ़ाइनेंस लिमिटेड पर भी मुखौटा कम्पनियाँ बनाकर पूँजी के हेरा-फेरी का आरोप है। इसी तरह लक्ष्मी निवास बैंक और यस बैंक भी दिवालिया होने की कगार पर हैं और उन्होंने भी बड़े पूँजीपतियों को इसी तरह क़र्ज़ बाँटे हैं।

बैंकों की पूँजी की लूट की भरपाई का सारा बोझ जनता की पीठ पर ही पड़ रहा है और आने वाले दिनों में यह और भी अधिक बढ़ने वाला है।

राजकोषीय घाटे का संकट

आर्थिक मन्दी के कारण जीएसटी के तहत राजकोष में संग्रह लगातार कम हुआ। मन्दी के कारण ही आय कर भी कम जमा हुआ। नौकरियों की अनिश्चितता के कारण उपभोक्ताओं के ख़रीदने की क्षमता भी कम हुई है जिसके कारण उत्पादों से मिलने वाला कर भी कम जमा हुआ है। इसका मतलब है सरकारी ख़ज़ाने में बजट से कम पैसा जमा हुआ है और मौजूदा ख़र्चों के हिसाब से राजकोषीय घाटा बढ़ा है। मन्दी के समय जब पूँजीपति वर्ग को अर्थव्यवस्था में निवेश करने से मुनाफ़ा नहीं दिखता तो वे केवल शेयर बाज़ार में सट्टे पर पैसा लगाते हैं और पूँजी की अवास्तविक बढ़ोत्तरी से मुनाफ़ा कमाते हैं। पूँजीपति वर्ग द्वारा निवेश बढ़ाने के लिए सरकार उनके पक्ष में और ज़्यादा नीतियाँ बनाती है, जैसे हाल ही में कई बार रिज़र्व बैंक द्वारा ब्याज दरों में कटौती की गयी और हाल ही में कॉरपोरेट टैक्स में भारी छूट भी दी गयी। कॉरपोरेट टैक्स में छूट देने से सरकारी खजाने को 1.45 लाख करोड़ रुपये का नुक़सान होगा। पर सरकार तो पहले ही घाटे में चल रही थी। घाटे में चलती सरकार ने न केवल पूँजीपतियों को टैक्स में छूट दी बल्कि बैंकों को 70,000 करोड़ की राशि और दे दी जिससे वे अपने घाटों की भरपाई कर लें। पहले भी उन्हें करीब दो लाख करोड़ रुपये दिये गये थे। इस तरह के क़दमों से राजकोष का जो नुक़सान हुआ उसकी भरपाई के लिए मोदी सरकार ने रिजर्व बैंक के सुरक्षित कोष से 1.76 लाख करोड़ हड़प लिये। रिज़र्व बैंक की सुरक्षित रकम को हड़पने की कोशिशें सरकार बहुत समय से कर रही थी। बिमल जालान समिति की रिपोर्ट के आधार पर सरकार के पिट्ठू नये आर.बी.आई गवर्नर के नेतृत्व में यह सम्भव हो गया और सरकार ने 1947 के बाद पहली बार रिज़र्व बैंक की सुरक्षित राशि पर भी हाथ साफ़ कर दिया। लेकिन इतने से भी घाटे का पेट नहीं भरा। अभी सरकार रिज़र्व बैंक से 30,000 करोड़ की रक़म और लेने वाली है।

पूँजीपतियों की मदद करते हुए जब सरकारी ख़ज़ाना और घाटे में चला जाता है तो सरकार के पास और उपाय भी रहते हैं। उसके पास सरकारी उपक्रमों के रूप में विशाल परिसम्पत्तियाँ भी होती हैं। सरकारी उपक्रम तो जनता के टैक्सों से खड़े किये गये हैं यानी वे जनता की सम्पत्ति हैं। पर सरकार इन्हें बेच देती

(पेज 12 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006